RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 57 अंक : 04 प्रकाशन तिथि : 25 मार्च कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 अप्रेल, 2020

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

राम तुम्हारा वृत स्वयं ही काव्य है,
कोई बन जाए कवि सहज संभाव्य है।

आदेश Shoppe

साफा एण्ड शेरवानी

शोरूम एण्ड टेलर्स

Sports, Men's & Kids Wear

समस्त वैवाहिक परिधान रेडीमेड एवं ऑर्डर पर उपलब्ध

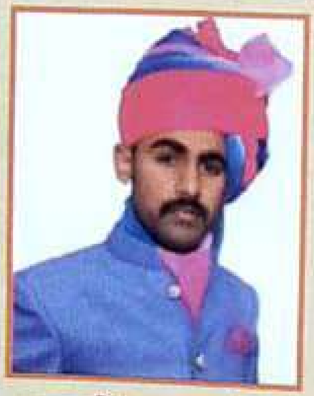

श्रवणसिंह भलासरिया
9694385874

दीपसिंह डेढ़ा
8952804363

हरिसिंह भलासरिया
9166222433

हमारे यहाँ साफा, शेरवानी, कण्ठा, तलवार आदि किराये पर मिलते है।

फनवर्ल्ड के पास, चौपासनी स्कूल हॉस्पिटल रोड़, चौपासनी, जोधपुर

श्री क्षत्रिय युवक संघ की गणवेश भी उपलब्ध है।

संघशक्ति

4 अप्रेल, 2020

वर्ष : 56 अंक-04

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
समाज-मर्यादा के आदर्श श्रीराम	श्री 'सुमन'	08
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	श्री चैनसिंह बैठवास	11
मेरी साधना	प्रो. रूपसिंह लिम्बड़ी	15
जीवन्मुक्ति के लक्षण	स्वामी यतीश्वरानन्द	21
गुमान कँवर	श्री ईश्वरसिंह चनाणा	25
श्रीराम जन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र-न्यास-अयोध्या	स्वामी श्री गोपालआनन्द बाबा	27
वर्तमान काल में विपरीत प्रवृत्तियाँ	आचार्य श्री कनकनन्दी	31
चित्रकथा-'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'	श्री ब्रजराजसिंह खरेड़ा	33
अपनी बात		34

समाचार संक्षेप

शिविर :

जनवरी माह से परीक्षाएँ निकट आ जाने के कारण विद्यार्थी पढाई पर ज्यादा ध्यान देते हैं अत: आगे अप्रेल माह तक विद्यार्थियों के शिविर नहीं लगते, शाखाएँ निरंतर रहती हैं। इन चार माह का सदुपयोग अन्य कार्यक्रमों में किया जाता रहा है। जनवरी में संघ संस्थापक पू. तनसिंहजी की जयन्ती स्थान-स्थान पर मनाई जाती है। इस वर्ष पू. आयुवानसिंहजी का जन्म शताब्दी वर्ष होने से उनकी स्मृति में भी कई स्थानों पर कार्यक्रम रखे गए थे। ये कार्यक्रम अक्टूबर माह तक विभिन्न स्थानों पर स्थानीय सुविधा के अनुसार आयोजित होते रहेंगे।

21 से 23 फरवरी तक जयपुर के पास हाथोज ग्राम में श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन से जुड़े सहयोगियों के लिये श्री क्षत्रिय युवक संघ का एक शिविर आयोजित किया गया। सभी शिविरार्थी 25 वर्ष से ऊपर की तथा अधिकांश 40 वर्ष से ऊपर की आयु के थे। मौसम भी अजीब था, रात में ओस की बूंदें टैण्ट में चू कर आती थी, सुबह देर तक शिविर स्थल ओस से गीला रहता था तो दोपहर खूब तेज धूप रहती थी। लेकिन हर उम्र के स्वयंसेवक ने पूरे उत्साह से हर कार्यक्रम में स्फूर्ति बनाये रखी।

7 से 10 फरवरी तक आलोक आश्रम बाड़मेर में दंपती शिविर का आयोजन हुआ। शिविर के बीच होली का त्योहार भी था। त्योहार के दिन घर छोड़कर कहीं जाना रूढिगत विचार से अच्छा नहीं माना जाता। इसलिए लग रहा था गिनी-चुनी दंपत्तियाँ ही शिविर में आ पाएगी। पुरुष तो फिर भी त्योहार पर बाहर कहीं जाएँ तो बुरा नहीं लगता लेकिन स्त्रियों का घर से बाहर जाना साधारणतया नहीं हो पाता। फिर भी शिविर में राजस्थान व गुजरात से अनेक दपंत्तियों ने भाग लिया और होली का त्योहार भी वहीं मनाया। कहीं जन्मे हों, कहीं रहते हों मगर हम सब एक ही बड़े परिवार के अंग हैं और परिवार की तरह ही सब मिलकर त्योहार मनाकर सामाजिक एकता का भाव दृढ करते हैं।

❑

- : शिविर सूचना :-

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं-

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि	
01.	ग्यारह दिवसीय (बालक)	18.5.2020 से 28.5.2020	पिराणा (गुजरात)	श्री कच्छ कड़वा पाटीदार गुरुकुल विद्याविहार (सत पंथ प्रेरणा पीठ) पिराणा, जिला-अहमदाबाद

अहमदाबाद रेलवे स्टेशन से 16 कि.मी. दूर-रेलवे स्टेशन से AMTS बस नं. 117/1 सीधे शिविर स्थान पर जाएगी। अहमदाबाद बस स्टैण्ड से 14 कि.मी. दूर। इस शिविर में 10वीं की परीक्षा दे चुके एवं एक माध्यमिक तथा दो प्राथमिक शिविर कर चुके शिविरार्थी ही शामिल हो सकेंगे। झनकार, निर्देशिका एवं मेरी साधना पुस्तकें साथ लावें। काला नीकर, सफेद कमीज या टी-शर्ट, काली जूती या जूता, पेन, डायरी, टॉर्च, रस्सी, चाकू, सुई डोरा, कंघा, लोटा, थाली, कटोरी, चम्मच, गिलास साथ लावें। मौसम के अनुसार बिस्तार लावें (एक परिवार के दो जनें हों तो अलग-अलग लावें) संघ साहित्य के अलावा कोई पत्रिका या पुस्तक एवं बहुमूल्य वस्तुएँ न लावें।

02.	ग्यारह दिवसीय (बालिका)	18.5.2020 से 28.5.2020	काणेटी (गुजरात)	त. साणंद, जिला-अहमदाबाद। काणेटी प्राथमिक शाला अहमदाबाद से बस द्वारा साणंद पहुँचना है।

इस शिविर में 10वीं कक्षा की परीक्षा दे चुकी बालिकाएँ अथवा 15 वर्ष की आयु प्राप्त की बालिकाएँ आ सकती हैं पर उन्होंने पहले कम से कम संघ के दो शिविर किए हुए हों। महिलाएँ आती हैं तो पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। गणवेश में केसरिया सलवार कुर्ता और संध्याकालीन प्रार्थना में साड़ी अथवा लहंगा-लूगड़ी होगी। सामान-जैसा बालकों के लिये आवश्यक है।

● 25 अप्रेल तक शिविर में आने के इच्छुक बालक-बालिकाएँ अपने प्रांत प्रमुख को अवश्य सूचित करें।

दीपसिंह बेण्यांकाबास

शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च प्रशिक्षण शिविर गनोड़ा (बांसवाड़ा) में 24 मई, 2019 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी द्वारा शिविरार्थियों हेतु उद्‌बोधित प्रभात संदेश}

क्षत्रिय युवक संघ संपूर्ण योग का मार्ग है। इसी संदेश के साथ हमने शिविर प्रारम्भ किया था। प्रारम्भ में अष्टांग योग के अंगों का कुछ वर्णन भी किया गया था। पाँच प्रकार के यम, पाँच प्रकार के नियम, फिर आसन, फिर प्राणायाम। जो कुछ हम संघ में ग्रहण करते हैं वह प्राणायाम में प्राणवायु को ऊपर खींचने के जैसा है। जो ग्रहण किया है उसी पर हम मनन करते हैं, उसी पर हम चर्चा करते हैं, यह प्राणवायु को रोकने (कुम्भक) जैसा है। जो ग्रहण किया है वह अन्य लोगों को बताना प्राणवायु को छोड़ने जैसा है।

प्राणायाम के बाद का अंग है प्रत्याहार। जो हमने ग्रहण किया वह आहार है। इतने दिन से हम साधनारत हैं, इस साधना के परिणामस्वरूप हमारी जीवनशैली में बदलाव आना चाहिए। आज्ञाओं को हमने सुना। उस पर मनन किया। मनन करने के बाद उन आज्ञाओं के प्रति हमारे अन्त:करण को कर्मशील करने की साधना प्रत्याहार की साधना है। इससे हमारे जीवन में सकारात्मक बदलाव आना चाहिए। यदि बदलाव नहीं आता है तो यह केवल ढकोसला रह जाएगा, एक पाखण्ड रह जाएगा, हमारे जीवन में परिवर्तन नहीं आता है तो जीवन बिताना व्यर्थ है। देश, समाज और मानवता की बात करना व्यर्थ है।

यहाँ क्षत्रिय युवक संघ में हम सभी स्वयंसेवक हैं। कोई अधिकारी नहीं है। उत्तरदायी हैं, अधिकारी नहीं हैं। घट की व्यवस्था एक परिवार की तरह करने के लिये एक घटप्रमुख बनाया गया है। शेष लोगों में से घट में जो दस स्वयंसेवक हैं, उनमें जो स्वयंसेवक उपयुक्त लगता है उसे उप-घटप्रमुख बनाया जाता है। यह एक पारिवारिक व्यवस्था है। हम हमारे परिवार में कैसे रहें, यह हम यहाँ सीख पाते हैं। इस परिवार में सामञ्जस्य बनाकर यहाँ तो हम रह लेते हैं, लेकिन अधिकतर स्वयं के परिवार में हम सामञ्जस्य के व्यवहार का पालन यदि नहीं कर पाते तो ईर्षा, द्वेष, स्वार्थ के कारण परिवार को डूबने से बचा नहीं पाएँगे। तब प्राप्त ज्ञान व्यर्थ है।

पथक शिक्षक सबको खेल खिलाते हैं, वे भी कोई अधिकारी नहीं हैं। आपको थोड़ा डांटते हैं तो दायित्व के कारण, यह उनका दायित्व है कि कोई गलती करता है, उसे मार्ग पर लाना है। आपकी जो अनियमितताएँ हैं, उनका नियमन करने के लिये, अपने दायित्व का समय-समय पर उपयोग करते हैं। यह जो सख्ती का उपयोग किया जा रहा है, वह अधिकार का उपयोग नहीं है, दायित्व का उपयोग है। कोई घटप्रमुख हो, कोई पथक-शिक्षक हो, कोई मण्डल प्रमुख हो, कोई शिविर प्रमुख हो, सब दिए गए दायित्व को निभाने के लिये उत्तरदायी हैं, अधिकारी नहीं हैं। संघप्रमुख भी अधिकारी नहीं है, पद है लेकिन अधिकारी नहीं है। इसीलिए हम उन्हें पदाधिकारी नहीं कहते, सहयोगी कहते हैं। सर्वोच्च सहयोगी हमारा संघप्रमुख है लेकिन वह भी हमारा सहयोग करता है और हम भी उसका सहयोग करते हैं। इस भावना के साथ जीवन में रहने का हम अभ्यास यहाँ करते हैं ताकि परिवार में, कार्यालयों में या विद्यालयों में, जहाँ कहीं भी हम रहते हैं वहाँ इसी भावना से रह सकें। यह भाव प्रत्याहार के बाद हमारे जीवन में आता है। यहाँ हम ग्यारह दिन तक जो अभ्यास कर रहे हैं, उससे यह भाव हमारे जीवन में आना चाहिए। भगवान से प्रार्थना करें कि जो मेरे जीवन में अच्छाई आए वह जाए नहीं। बुराइयाँ हैं वे रुकें नहीं और अच्छाइयाँ हैं वे जाएँ नहीं। भगवान की कृपा के बिना यह सम्भव नहीं है।

आज्ञाओं की पालना हो। किन्तु आज्ञा देने वाला पहले सोचे कि क्या मैं इसका पालन कर रहा हूँ? बाबाजी

स्वयं गुड़ खाए और दूसरों को परहेज बताएँ, ऐसा यहाँ नहीं चलने वाला है। यहाँ हमें जीवन की व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण करनी है, इसलिए सदैव कर्मशील रहना होगा। विश्राम करने का समय भोजन करने के तुरन्त बाद थोड़ी देर मिलता है फिर रात को मिलता है। इसके अतिरिक्त जो विश्राम करता है, वह जागरूक नहीं है, उत्तरदायी नहीं है, वह स्वयंसेवक भी नहीं है। यहाँ हम विश्राम करने के लिये नहीं आए हैं। विश्राम तो हम जीवन भर करते रहे हैं। यहाँ हम कर्मक्षेत्र में आए हैं। यह कुरुक्षेत्र है और यहाँ आते ही कुरु (प्रारम्भ) हो जाता है। लेकिन यदि हमारे जीवन में प्रारम्भ नहीं हुआ है तो क्षत्रिय युवक संघ कितना ही प्रयत्न करे, प्रयास करे, पुरुषार्थ करे वह काम नहीं आएगा। इस सबके लिये उत्तरदायी हम स्वयं हैं। क्षत्रिय युवक संघ मार्गदर्शन कर रहा है, लेकिन उस मार्ग पर चलने का कार्य तो हमको ही करना पड़ेगा। यदि हम उस प्रकार से नहीं चलते हैं, जिस ढंग से जीना चाहिए उस ढंग से जीवन नहीं जीते हैं; जीवन के उद्देश्य के लिये जीवन नहीं जीते हैं; केवल खाने-पीने के लिये ही जी रहे हैं, तो जीवन तो व्यर्थ ही बीता जा रहा है।

आज्ञाओं का पालन करें। घटप्रमुख भी कोई आज्ञा देता है तो उसके अनुसार चलें। घटप्रमुख भी अधिकारी नहीं है। यहाँ अधिकार नहीं है, कर्तव्य ही कर्तव्य है। संसार में तो सिखाया जाता है कि तुम्हारे क्या अधिकार हैं। लोग विभिन्न संगठन बनाकर भी केवल अधिकारों की बात करते हैं। क्षत्रिय युवक संघ अधिकारों की बात नहीं करता, कर्तव्यों की बात करता है। इसीलिए लोगों को संघ आकर्षक नहीं लगता है। क्योंकि कर्तव्य पालन मुश्किल होता है, अधिकारों की माँग करना सरल होता है। लोगों का नारा होता है-चाहे जो मजबूरी हो, हमारी मांगें पूरी हों। मांगे पूरी करवाने से पहले क्या आप अपने कर्तव्य का निर्वहन भली प्रकार कर रहे हैं? जो कर्तव्य पालन करता है, उसको मिलता भी है।

यहाँ जो सुविधाएँ दी जा रही हैं, वे आप काम में ले सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि आपको सब सुविधाएँ काम में लेनी ही है। सुविधाएँ हैं लेकिन बहुत आवश्यक हो जाए तो ही सुविधा लेनी चाहिए। सुविधाएँ बिखरी पड़ी हैं चारों तरफ लेकिन उन सुविधाओं को लेने से बलपूर्वक अपने आपको रोकेंगे। स्वानुशासन से, आत्मानुशासन से। तभी हम साधक बन पाएंगे। तभी हमारे जीवन में प्रत्याहार घटित होगा। अन्यथा तो सारी दुनिया जैसे कर रही है, वैसे ही हम कर रहे हैं। दुनिया के लोगों का, संसार का प्रवाह तो नीचे की ओर है पर हम तो साधक हैं, हमारा प्रवाह तो ऊपर की ओर होना चाहिए। इसीलिए हमारी साधना को उर्द्धवगामी कहा जाता है। घट के स्वयंसेवक, घटप्रमुख, पथक शिक्षक, शिविर प्रमुख सभी इस साधना में उत्तरदायी हैं। संघप्रमुख भी उत्तरदायी है। आप भी सहयोगी हैं, पूरे घट का सहयोग करते हैं। घट में आज्ञा मानकर उसका पालन करते हैं, खेलों में खिलाने वाले की आज्ञा का पालन करते हैं। संपूर्ण क्षत्रिय युवक संघ आज्ञा मानकर सहयोग करता है, संघ के सभी कार्यक्रमों में। संघप्रमुख स्वयं सहयोग लेता है और सहयोग देता है। छोटी-छोटी सी शिक्षाएँ क्यों देनी पड़ती हैं, आप यह नहीं करेंगे, यह करेंगे ऐसे निर्देश क्यों दिए जाते हैं? क्योंकि संसार में ऐसी शिक्षा मिलती नहीं है। हमारे लिये यह मार्ग है जहाँ यह शिक्षा मिल पाती है जीवन में निखार लाने के लिये।

दिन भर परिश्रम करते हैं, पसीना आता है। इतनी व्यस्तता के कारण कुछ कुविचार भी आए बिना रह नहीं सकते। अनर्गल बातें यदि करेंगे तो अनर्गल ही जीवन बन जाएगा। इसलिए कम से कम बोलें और अधिक से अधिक सुनें। अपने आप पर नियंत्रण, अपने आप पर वशीकरण सीखें। शरीर पर, मन पर, बुद्धि पर नियंत्रण करें, वश में रखें। हम तो कुछ नहीं कर रहे हैं, यह तो हमारा मन करवा रहा है, बुद्धि करवा रही है, शरीर की जड़ता करवा रही है, ऐसे तर्क में न उलझें। इनसे ऊपर उठना है। शरीर हमारे वश में होना चाहिए, मन हमारे वश में होना चाहिए।

हम इनके वश में हैं तब तक हम इनके गुलाम हैं। हम इनके वश में रहकर सदियों से पिसते आए हैं, सदियों से दास बने हुए हैं। अब हमारे सामने वर्तमान है जिसमें हम पीसे जा रहे हैं अपने शरीर के कारण, मन की गुलामी के कारण, अपनी इन्द्रियों की गुलामी के कारण। इनकी बेड़ियों को कौन तोड़ेगा? जो इनकी बेड़ियाँ नहीं तोड़ सकता, उसका जीवन गर्त हो जाता है। हमें ऐसा श्रेष्ठ जीवन मिला है-मनुष्य योनि का, वह सब बेकार चला जाएगा। भगवान से प्रार्थना करें कि जिस कार्य की पूर्ति के लिये मुझे इस संसार में भेजा है; मैं नादान हूँ, मैं भूल जाता हूँ, मेरी रक्षा करो, मेरा हाथ पकड़े रखो, मैं आपका हाथ नहीं पकड़ सकता। यह समर्पण का श्रेष्ठतम रूप है।

आपसे कोई पूछते हैं कि आपके संघ में शारीरिक शिक्षा ही देते हैं या बौद्धिक शिक्षा भी देते हैं; खेल ही खिलाते हैं या राजपूतों के लिये कोई शिक्षा दी जाती है; सामाजिक और राष्ट्रीय शिक्षा भी दी जाती है या परमेश्वर की भी साधना है? आपको इसका उत्तर नहीं मिलता होगा। यह संघ ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिवेणी है। यह त्रिवेणी है व्यष्टिगत जीवन, समष्टिगत जीवन और परमेष्टिगत जीवन की। सारे योग इसमें घटित होते हैं। लोग आपसे पूछते हैं उसके लिये संघ आपको उत्तर देता है, रोज देता है। आप उनके प्रश्न का जवाब नहीं दे पाते तो आप में हीन भावना आती है कि मैं जानता नहीं हूँ। जो देखता नहीं है, जो सुनता नहीं है, जो अपने आप को बदलता नहीं है, वो उत्तर नहीं दे पाता है। आपको संसार के सारे प्रश्नों के उत्तर देने की तैयारी करवाई जा रही है। आप वह व्यक्ति बनें जो संसार को मार्ग दिखाता है। क्षत्रिय युवक संघ आप से यह अपेक्षा करता है। आपको शाखाएँ लगानी हैं, प्रसार करना है, साधना करनी है लेकिन अपने आचरण को बनाने को नहीं भूलना है, नहीं तो कुछ भी नहीं कर सकेंगे। जिसने शिक्षण लिया नहीं वह यदि प्रचार-प्रसार करता है तो पाखण्ड फैलेगा। लोगों को बुला-बुलाकर इकट्ठा करना, सादगी की बात करना और रोजाना मिठाई बनाना। यह क्या है? क्षत्रिय युवक संघ की सादगी की शिक्षा दी जाए, शरीर को पतित न करने की और हमारे लिये माया फैलाई जाए। भगवान ऐसी व्यवस्था करने वालों को सद्‌बुद्धि दे। हमको साधारण ही रहने दें। यदि बार-बार मिठाई दी जाए तो खाने में मिठाई न खाएँ क्योंकि सभी सुविधाएँ भोगने के लिये नहीं हैं। जिनका जीवन लचर होता है, जिन्हें लीचड़ कहा जाता है वे सुविधाओं के बिना रहते नहीं हैं। पर हमारे जीवन में आज से ही प्रत्याहार प्रारम्भ हो जाना चाहिए। जो भी सुविधा है उसका मैं उपयोग नहीं करूंगा, केवल जो आवश्यक है, उसी का उपयोग करूंगा। मन के कारण हमें छूट नहीं लेनी चाहिए। घटप्रमुख अपने आप पर भी ध्यान रखें और घट पर भी ध्यान रखें कि कौन सुविधाओं का उपयोग कर रहा है और कौन क्या कर रहा है। शिक्षकों को भी ध्यान रखना चाहिए कि कौन इन बातों पर ध्यान रख रहा है, कौन नहीं रख रहा है। सभी अपने आप पर ध्यान रखें। इतने जागरूक होंगे तो निश्चित रूप से इस धरती पर हम स्वर्ग को उतार देंगे। यह क्षत्रिय युवक संघ की साधना का अंग है और आज के मंगल प्रभात में यही संसार के लिये संदेश है।

जो यह सोचता है,-''अवसर मिलेगा तब से मैं सच बोलना शुरू करूंगा,'' वह जीवन में शायद ही कभी सच बोल सकेगा। पुण्य कार्य के लिये हर अवसर स्वर्णिम है। ईश्वराधना का कोई निश्चित मुहूर्त नहीं होता। जागृत साधक वही है जो अपने किसी शुभ कार्य को कभी करने के लिये स्थगित नहीं करता है।

- पू. तनसिंहजी

समाज-मर्यादा के आदर्श श्रीराम

- श्री 'सुमन'

भगवान श्रीराम भारतीय समाज-मर्यादा के आदर्श हैं। वे भारतीय संस्कृति की सामाजिक विशिष्टताओं के प्रतीक हैं। उनके जीवन में हमारी सामाजिक मर्यादाएँ एवं आदर्श अभिव्यक्त हुए हैं।

समस्त भारतीय संस्कृति त्यागमयी है। उसमें प्रत्येक वर्ग के लिये, अपने स्तर एवं स्थिति के अनुसार, भोग को क्रमशः छोड़ते हुए त्याग की वृत्ति ग्रहण करने पर बल दिया है। जहाँ भोग है भी, वहाँ वह त्याग के लिये एक सीढी के रूप में है। इसीलिए भारतीय जीवन आत्मार्पण की भावना पर गठित हुआ है। इस भावना के कारण सामाजिक पक्ष में अधिकार के स्थान पर कर्तव्य की प्रधानता स्थापित हुई है। राम का समस्त जीवन त्याग प्रधान एवं उदात्त कर्तव्य भावना से पूर्ण है। उनका जीवन कहीं भी अपने लिये नहीं है। वह एक आदर्श से प्रेरित, एक आदर्श के लिये समर्पित और उस आदर्श को आचरण में व्यक्त करने के लिये निरंतर प्रयत्नशील जीवन है। वह व्यक्तिगत सुख एवं भोग पर कर्तव्योन्मुख लोकहित की प्रधानता का जीवन है।

वंश-मर्यादा- जिस वंश में उन्होंने जन्म लिया था उसमें भारतीय संस्कृति के आदर्श को प्रकाशित करने वाले एक से एक महापुरुष हुए हैं। हरिश्चन्द्र, दिलीप, भरत, रघु, एक से एक राजा इस वंश में हुए हैं। इस वंश का वर्णन करते हुए कालिदास ने लिखा है-

'मैं उन प्रतापी रघुवंशियों का वर्णन करने बैठा हूँ जिनके चरित्र जन्म से लेकर अंत तक शुद्ध और पवित्र रहे, जो किसी काम को उठाकर उसे पूरा करके ही छोड़ते थे, जिनका राज्य समुद्र के ओर-छोर तक फैला हुआ था, जिनके रथ पृथ्वी से सीधे स्वर्ग तक आया-जाया करते थे, जो शास्त्रों के नियम के अनुसार ही यज्ञ करते थे, जो माँगने वालों को मनचाहा दान देते थे, जो अपराधियों को अपराध के अनुसार ही दण्ड देते थे, जो अवसर देखकर ही काम करते थे, जो दान करने के लिये ही धन बटोरते थे, जो सत्य की रक्षा के लिये बहुत कम बोलते थे कि जो कहें उसे करके भी दिखा दें, जो दूसरों का राज हड़पने या लूट मार के लिये नहीं वरन् अपना यश बढाने के लिये ही दूसरे देशों को जीतते थे, जो भोग विलास के लिये नहीं वरन् सन्तान उत्पन्न करने के लिये ही विवाह करते थे, जो बालपन में विद्याभ्यास करते थे, तरुणावस्था में संसार के भोगों का आनन्द लेते थे, बुढापे में मुनियों के समान जंगलों में रहकर तप करते थे और अन्त में परमात्मा का ध्यान करते हुए अपना शरीर छोड़ते थे।'

ऐसे वंश में उनका जन्म हुआ था; सहज ही श्रेष्ठ संस्कार उन्हें मिले थे। रघुवंशियों के लिये तुलसीदास जी ने भी कहा है,

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाय बरु बचनु न जाई।।

शुभ संस्कार युक्त जीवन :

वे सत्यसंघ महाराज दशरथ और चारुशीला महारानी कौशल्या की प्रिय संतान थे। इसलिए उनमें शुभ संस्कार बचपन से थे। यों तो वे साक्षात् परमेश्वर, ब्रह्मावतार ही थे; किन्तु मानवीय दृष्टि से देखा जाए तो भी वे मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। शरीर-सम्पत्ति एवं प्रतिभा के आलोक से उनका शैशव आलोकित है; बचपन से ही वे शील के समुद्र हैं, विद्योपार्जन में केवल सैद्धान्तिक ज्ञान नहीं वरन् जीवन, उनके श्रेष्ठ कर्तव्य और आदर्शों की विकासमान अनुभूतियाँ उनमें विद्यमान हैं-छोटों पर ममता एवं स्नेह तथा गुरुजनों के प्रति सम्मान एवं भक्ति से उनका हृदय पूर्ण है। माता-पिता दोनों की अक्षय स्नेहधारा से स्निग्ध एवं मृदुल हृदय उनको मिला है; परन्तु कहीं भी उनमें अनावश्यक चंचलता नहीं है; सर्वत्र वे अपने शील एवं चरित्र की गम्भीरता के साथ हैं।

श्रेष्ठ वंश-विभूति, माता-पिता का गम्भीर वात्सल्य, एक महान् राज्य की भावी अधिकार, अनुगत बन्धु,

गुरुजनों का आशीर्वाद, असीम पौरुष एवं बल-सब मिलकर कहीं उनमें अहंकार की सृष्टि नहीं कर पाते हैं, न वे विभूतियाँ उन्हें अपने कर्तव्य से शिथिल कर पाती हैं। माता के आँसू और पिता का प्राण-त्याग उनके कर्तव्य मार्ग, धर्म मार्ग के कुछ पद चिन्ह हैं। प्राणप्रिय पत्नी का त्याग उनकी कठोर कर्तव्य-भूमि का स्मारक है।

महर्षि वाल्मीकि उनके सम्बन्ध में लिखते हैं-

'वे बड़े रूपवान एवं पराक्रमशील थे। किसी का दोष नहीं देखते थे। संसार में अनुपम थे; दशरथ के समान ही योग्य पुत्र थे। प्रशान्तात्मा और मृदुभाषी थे। यदि कोई उन्हें कठोर बात भी कह देता तो उसका उत्तर नहीं देते थे। कोई कभी एक भी उपकार कर देता तो सदैव उसे याद रखते और उससे संतुष्ट रहते थे और कोई सैकड़ों अपराध करता तो उन्हें भूल जाते थे। अस्त्राभ्यास काल में भी समय निकाल कर शील, ज्ञान एवं आयु में श्रेष्ठजनों का संग कर उनसे शिक्षा लेते थे। वे बुद्धिमान तथा मदुभाषी थे; मिलने वालों से पहले स्वयं प्रिय वचन बोलते थे। बल एवं पराक्रम में बढे-चढे होने पर भी उन्हें कभी गर्व नहीं होता था। कभी कोई झूठी बात तो उनके मुख से निकलती ही न थी। विद्वान होते हुए भी बड़े-बूढ़ों की भक्ति करते थे। उनका प्रजा के और प्रजा का उनके प्रति बड़ा अनुराग था। वे दयालु, क्रोध को जीतने वाले, ब्राह्मणों के पूजक, दीन दयालु, धर्म के ज्ञाता, इन्द्रियों को सदा वश में रखने वाले और भीतर-बाहर से पवित्र थे। कुलोचित आचार के पालनकर्ता एवं स्वधर्म-क्षात्रधर्म को बहुत महत्त्व देने वाले थे और उसके द्वारा ही महान् स्वर्ग धर्म पाने के प्रति विश्वासी थे। किसी अश्रेय कार्य में उनकी कभी प्रवृत्ति नहीं होती थी, न शास्त्र विरोधी बातें सुनने में कभी रुचि होती थी। वे अपनी बातों के समर्थन में साक्षात् बृहस्पति के समान एक से एक युक्ति देते थे। वे निरोग एवं तरुण थे। वे अच्छे वक्ता, कान्तवपु तथा देशकालवित् थे। जैसे विधाता ने संसार के समस्त पुरुषों के सारतत्त्व को समझने वाले साधुपुरुष के रूप में श्रीराम को प्रकट किया हो।'

वाल्मीकि ने पुनः कहा है- ***दृढभक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचः*** अर्थात् गुरुजनों के प्रति दृढ भक्ति रखने वाले और स्थितप्रज्ञ थे; असत् वस्तुओं को कभी ग्रहण नहीं करते थे; कभी दुर्वचन नहीं बोलते थे।

तुलसीदास जी तो उनके शील का वर्णन करते हुए अघाते नहीं। रामायण उनके श्रद्धावाक्यों से भरी पड़ी है; अन्य रचनाओं में वे बार-बार श्रीराम की दयाशीलता एवं अनुकम्पा का द्रवित हृदय से वर्णन करते हैं। सबका सारांश इस पद में है -

ऐसा को उदार जग माहीं?
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।।

वे सुख-दुख से परे, स्थितप्रज्ञ थे। ***प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः*** राज्य प्राप्ति से प्रसन्न नहीं, वनवास से दुखी नहीं। राज्य भी कर्तव्य पालन के लिये धर्मपालन के लिये था और वनवास भी कर्तव्यपूर्ति के लिये था। समस्त जीवनमार्ग उनके लिये कर्तव्य-धर्म पूर्ण है। ***पारिवारिक जीवन-*** पारिवारिक जीवन की दृष्टि से देखिये तो श्रीराम एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई एवं आदर्श पति हैं। माता-पिता एवं गुरुजन के प्रति उनमें असीम सम्मान का भाव है। भाइयों के प्रति उनका हृदय प्रेम से इतना द्रवित है कि राज्याभिषेक की बात उन्हें अद्भुत लगती है। सोचते हैं-'एक साथ जन्मे, एक साथ पालन-पोषण हुआ, खाये, खेले, पढे; यह क्या रीति है कि एक भाई को गद्दी मिले?' पहले भाइयों के सुख-सुविधा की बात सोचते हैं, तब अपनी। पत्नी उनकी परम अनुगता है और वे भी उसके प्रति सहज प्रेम से पूर्ण हैं। किन्तु यह मातृ-पितृ भक्ति, यह भ्रातृ प्रेम, यह दाम्पत्य-प्रणय इतने उच्च स्तर पर है, वे इतने श्रेष्ठ संस्कारों से पूर्ण हैं कि वे उनके जीवनादर्शों में सहायक और साधक हैं। मोहाविष्ट प्राणियों की तरह वे उनके लिये बन्धनकारी नहीं हैं, श्रेय साधक हैं। प्रेम यहाँ मुक्तिदाता है, मोहक एवं मूर्छाकारक नहीं।

जगत के संपूर्ण स्नेह-सम्बन्ध आत्मरूप को लेकर ही हैं। श्रुति भी यही कहती है। इसलिये धर्म को प्रकाशित करने में ही उनकी महत्ता है। जब ऐसा नहीं होता तो वही

प्रेम मोह रूप हो जाता है और सामाजिक पराभव का भी कारण होता है। श्रीराम के जीवन में यही सत्य प्रकट हुआ है। उनके पारिवारिक जीवन में हमें स्नेह की कोमलता के साथ इसी कर्तव्यनिष्ठ दृढता के दर्शन होते हैं।

श्रेयपथ में :

पिता के सत्य एवं धर्म की रक्षा के लिये, युवराज-पद पर अभिषेक के दिन वे समस्त राजसिक सुविधाओं का त्याग कर जीवन के कण्टक-वन की ओर अग्रसर होते हैं। पिता की मूर्छा और मृत्यु, भाइयों की हृदय-व्यथा, पत्नी के कष्ट, स्वजनों का आर्तनाद और प्रजावर्ग का गंभीर शोक भी उन्हें कर्तव्य-मार्ग से विरत नहीं कर पाते। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनके इस त्याग में कहीं आवेश नहीं है, अनुचित वेग नहीं है। वह सब उनके लिये सहज है। वह शान्त, आवेगहीन, मर्यादाओं से पूर्ण है। जब उनके ससुर जनक तथा भाई भरत आदि माताओं सहित उन्हें मनाने जाते हैं, तब स्नेह के भार एवं शील-संकोच से सिर झुकाए हुये वे केवल अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं और कर्तव्य के निर्णय एवं आदेश का भार उन्हें ही सौंप देते हैं। अपने धर्म में दृढ रहते हुए भी कहीं गुरुजनों से तर्क-वितर्क नहीं करते, सदा अपनी समाज मर्यादा का ध्यान करके ही विनयपूर्वक उत्तर देते हैं।

सामाजिक एवं राष्ट्रीय आदर्शों की दृष्टि से विचार कीजिये तो हम उन्हें सदैव अन्याय एवं अधर्म की शक्तियों से युद्ध करते देखते हैं। उनका समस्त जीवन अनैतिकता एवं अधर्म के विरुद्ध एक निरंतर संघर्ष का जीवन है। सामाजिक दृष्टि से अपने जीवन में उन्होंने निषादराज, शबरी इत्यादि निम्न जनों को अपनाया, अहल्या का उद्धार करके मानो बताया कि महात्मागण पतित से घृणा नहीं करते, उनमें अपनी शक्ति का, पावनता का अधिष्ठान कर उन्हें ऊपर उठा देते हैं। छोटे वानर-वनचरों को अपने संसर्ग एवं संस्कार से उन्होंने शक्ति एवं महत्त्व की सीमा तक पहुँचा दिया। आर्यावर्त का जातीय जीवन उस समय विजड़ित एवं विशृंखल हो रहा था। विद्या एवं शक्ति से मदांध रावण के आतंक से समस्त दक्षिणापथ एवं मध्य भारत कांपता था। भोगोन्मुखी आसुरी सभ्यता ने धर्म एवं श्रेष्ठ संस्कारों का आर्य-जीवन असंभव कर दिया था। ऋषियों एवं तपस्वियों के कार्यों में बड़ी बाधाएँ उपस्थित होती थीं। रावण ने अपनी विद्या-बुद्धि से अनेक प्राकृतिक शक्तियों को वशीभूत कर लिया था। वायु एवं अग्नि पर नियंत्रण स्थापित कर उनसे मनमाना काम लेता था। मानव-जीवन को आत्मिक विकास के मार्ग पर प्रेरित करने वाली और तपः पूत संस्कृति को महत्त्व देने वाली आर्य सभ्यता के लिये संकट उपस्थित था।

श्रीराम ने अपने कौशल, पराक्रम, संगठनशक्ति और अक्षय आत्म विश्वास से रावण एवं उसकी अज्ञानमूला पद्धति का विनाश किया और बन्धनों में बंधे देश को पुनः मुक्त, स्वस्थ वातावरण में सांस लेने और जीने का अवसर प्रदान किया। शत्रु के साथ युद्ध में भी हम देखते हैं कि श्रीराम के पास भौतिक साधन शत्रु की अपेक्षा नगण्य थे। परन्तु आत्मिक शक्तियों एवं उदात्त गुणों के समुचित संगठन द्वारा उन्होंने भयंकर शत्रु पर विजय पायी।

असत्य एवं अन्धकार से सत्य एवं प्रकाश का युद्ध ही श्रीराम के जीवन में प्रबलता के साथ व्यक्त हुआ है। मानव मात्र के जीवन में यह युद्ध न्यूनाधिक मात्रा में चलता रहता है, चल रहा है। असत्य एवं अधर्म के प्रति युद्ध करते हुए उसके निवारण-निराकरण में हम जिस सीमा तक लगते हैं उसी सीमा तक मानो श्रीराम को अपने जीवन में उतारते हैं। जिस सीमा तक हम श्रीराममय बनते हैं, उसी सीमा तक हम धर्मरूप होते हैं, क्योंकि श्रीराम ही आर्य संस्कृति की सामाजिक मर्यादा के आदर्श हैं। वही धर्म हैं, वही जीवन हैं, वही आत्मा हैं, वही परमात्मा हैं। उनके चरित्र का श्रवण, मनन, अनुकरण कर, उनसे अपने हृदय की गांठ बाँधकर हम पावन एवं धन्य हो सकते हैं।

❑

मेरी मान्यता है कि कोई भी राष्ट्र धर्म के बिना वास्तविक प्रगति नहीं कर सकता। – **महात्मा गाँधी**

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

व्यक्ति जब समझने लगता है तो अपने आस-पास को देखता है, दुनिया के काम-काज व लोगों को देखता है, उनके काम-काज व हुनर को देखता है, उनमें उनकी रुचि व लग्न को देखता है, रुचि व लग्न के अनुरूप उनमें उनकी दक्षता, कुशाग्रता व प्रतिभा (Talent) को देखता है, काम-काज में हासिल की गयी उनकी प्रवीणता व श्रेष्ठता को देखता है। इस तरह इस दुनिया में होने वाले अनेकों काम-काज व कई चीजों को देखकर व्यक्ति स्वयं अपनी लग्न व रुचि के अनुरूप आगे बढ़ता है और अपने द्वारा अपनाये गये काम में दक्षता यानी श्रेष्ठता हासिल कर लेता है, उस काम में वह पारंगत हो जाता है।

अपनी लग्न व रुचि के अनुरूप हर व्यक्ति आगे बढ़कर उसमें पारंगत (दक्ष) हो जाने का प्रयास करता है। किसी को डॉ. बनने की रुचि होती है तो वह डॉक्टर बनने का प्रयास करता है, किसी को प्रशासनिक अधिकारी आई.ए.एस. आर.ए.एस. बनना है तो उसके लिये प्रयास करता है, किसी को पुलिस अधिकारी बनना है, किसी को वैज्ञानिक बनना है तो वे उसी ओर अपने प्रयास करते हैं, कोई खेल-कूद में रुचि लेता है, कोई संगीत में रुचि लेता है और अपनी जिज्ञासा व लग्न में उसमें आगे बढ़ता है, तो कामयाब भी होता है। यह सब व्यक्ति की लग्न और रुचि पर निर्भर करता है।

पूज्य श्री तनसिंहजी चौपासनी विद्यालय जोधपुर में पढ रहे थे। चौपासनी विद्यालय में होने वाले खेल-कूद, घुड़ सवारी, तैराकी, वाद-विवाद प्रतियोगिता, भाषण आदि होने वाले कार्यक्रमों में से कई कार्यक्रमों में तो पूज्यश्री स्वयं भी भाग लेते थे, पर वहाँ विद्यालय में होने वाले कई कार्यक्रम ऐसे थे जिनमें उनकी रुचि व लग्न तो थी, पर उनमें वे दक्ष (Talent) नहीं थे, वे अपनी इस कमी को पूरा करना चाहते थे। उन्होंने मन ही मन ठान लिया कि मुझे इनमें भी दक्षता हासिल करनी है और अपना प्रयास उस ओर शुरू कर दिया। वे जिन खेलों में कमजोर व फिसड्डी थे, उनमें अपनी रुचि व लग्न के कारण उन्होंने दक्षता हासिल की, पर सामन्य राजपूत व अमीर यानी रहीस जादों के बीच जो भेद था, वह कभी मिट नहीं पाया। यह बात उनके दिल को कचोटती रही।

चौपासनी विद्यालय जोधपुर में आवासीय छात्रावास थे। सामान्य व गरीब घर के विद्यार्थियों के लिये अलग से छात्रावास थे तथा अमीर व रहीसजादों के लिये अलग से छात्रावास थे। पूज्य श्री तनसिंहजी ने उन अमीर रहीसजादों को सम्बोधित करते कहा-

''जब मैं राजा के सदावृत में रहता था, तब तुम भी वहीं रहा करते थे। सदावृत होते हुए भी तुम्हारे लिये वह सदावृत नहीं था। तुम लोगों के लिये अलग छात्रावास और खाने की अलग व्यवस्था थी। मैंने तुम्हें बड़ी गहराई से वहीं देखा। न खेलकूद में तुम बढे-चढे थे, न पढने लिखने में। न उदारता और महानता में बढे-चढे थे और न कला साहित्य में। मैं हैरान था कि इतने पीछे रहकर भी तुम बड़े क्यों कहलाते थे? तुम यदि किसी क्षेत्र में बढे-चढे थे, तो केवल कपड़ों की टीप-टाप में और चुप रहने में। तुम्हारे शरीर पिलपिले और पीले थे। शायद इसलिए तुम्हें रहीस और हमें सामान्य यानी गरीब कहा जाता था।

''रहीस बन्धु! मैं भी खेलकूद में तुम्हारी ही तरह फिसड्डी था। तैरना मुझे आता नहीं था। घुड़सवारी तो दूर से देखा जरूर करता था। हाँ, मुझे केवल पढना, लिखना और बोलना जरूर आता था, पर मेरे मन में धुन थी कि मैं अपनी सभी कमियों को पूरा करूँ। सेठ के सदावृत में पहुँचा, उस समय मैं अच्छे तैराकों में था और उक्त

सदावृत में तैरने का कप्तान भी बना। दौड़ने में भी मैंने सेठ के सदावृत का राजपूताना ओलम्पिक में प्रतिनिधित्व किया था। वहाँ मैंने तुम्हारी टीप-टाप भी सीखी और शरीर भी मजबूत बनाया, पर मैं आज तक हैरान हूँ कि जीवन के सभी क्षेत्रों में तुमसे अधिक सिद्धि प्राप्त करके भी मैं साधारण (गरीब) ही कहलाता हूँ और तुम रहीस। ठहरो! शायद यह लक्ष्मी और धन का कारण हो, तो मैंने पढने लिखने के बाद धन कमाना भी शुरू किया। नया मकान बनवाया, एक मोटर खरीदी, रेडियो लिया, तुम्हारी तरह मैंने धन के क्षेत्र में भी दौड़ लगाई। राजनैतिक क्षेत्र में भी अच्छा खासा ही नहीं, एक तपस्वी नेता बन गया, फिर भी समझ में नहीं आता, मैं साधारण-सामान्य ही कहलाता हूँ और तुम रहीस क्यों कहलाते हो? हाँ, तो एक ही कारण हो सकता है कि तुम रहीस जादे हो और मैं एक साधारण घर में जन्मा हुआ स्वयं एक साधारण हूँ।''

राजपूत, राजपूत में भेद देखिये। एक साधारण घर में जन्म लेने वाला राजपूत साधारण यानी निम्न कोटि का और एक अमीर घर में जन्म लेने वाला राजपूत रहीस यानी उच्च कोटि का। राजपूत, राजपूत में भेद कर दिया गया। इस भेद ने राजूपत जाति को दो श्रेणी में विभाजित कर दिया। दोनों के बीच में जन्म से लेकर एक दीवार खड़ी कर दी गयी। ऊँच-नीच के इस भेद ने राजपूत जाति को कभी एक नहीं होने दिया। रहीसों की नजर में साधारण घर में जन्मा राजूपत नीचा यानी निम्न कोटि का और रहीस घर में जन्मा राजपूत ऊँचा यानी उच्च कोटि का, यह धारणा रहीसजादों में घर कर गयी, उनमें जम कर बैठ गयी। इसलिए वे सामान्य राजपूत को कोई भाव नहीं देते यानी उन्हें कोई तवज्जोह नहीं देते। पूज्य श्री तनसिंहजी ने एक छात्र संगठन बनाया, पर उसमें रहीस जादा कोई नहीं आया, वह छात्र संगठन साधारण राजपूतों तक ही सीमित रहा। रहीस जादों के लिये सामान्य राजपूत अछूत थे और अछूत ही रहे। वे साधारण राजपूतों से भेदभाव करते थे इसलिए जिस संगठन का अगवा एक साधारण राजूपत हो, उन्हें वे पचा नहीं सकते। इस कारण छात्र संगठन का वे कभी हिस्सा नहीं बन पाये। राजूपत समाज में बिखराव की वजह यही रही और इसका फायदा बुद्धिजीवियों ने उठाया। जबकि राजपूत, राजूपत में कैसा भेद। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा -

''राजा के सदावृत में रहते हम साधारण व्यक्तियों के मन में भी अपनी हालात पर तहस आने लगी। हमारे उन दिनों के क्रियाकलाप हमारी योग्यता के नहीं, हमारी भावनाओं के द्योतक थे। मैंने एक छात्र संगठन बनाया था पर तुम (रहीस जादे) कभी नहीं आये। मैं तुम्हारे लिये (रहीस जादों के लिये) सदैव अछूत रहा और तुम मेरे लिये सदैव बड़े रहे। सेठ के सदावृत में जाने पर फिर संगठन की कोशिश की। राजा की राजधानी में ही उस संगठन का पहला अधिवेशन हुआ। कुल 30-35 साधारण राजपूत भाई इकट्ठे हुए, पर उनमें भी कोई रहीसजादा नहीं था। राजा की ओर से एक बार आकर कहा गया कि वह हमारा भाई है। उस दिन मैंने देखा, मेरे और राजा के बीच तुम एक ऐसी अलंघ्य दीवार थे, जिस पर कूद कर जाना कल्पना के बाहर की बात थी। हम साधारण लोगों ने आवाज उठाई, तुम्हारी रहीसजादों की सभा में हमें समान प्रतिनिधित्व मिले। कार्यकारिणी में भी हमारी संख्या बराबर की हो। उन प्रस्तावों पर तुम कितनी कुटिलता से मुस्कराते थे। तुम्हारे ही वर्ग के एक भूतपूर्व राज्य मंत्री ने तो यहाँ तक कहा था कि साधारण राजपूतों और रहीसजादों की भाषा में वे कभी सोचते ही नहीं। तुम्हारे पाँच मण के खीचड़े में मेरी वह डेढ चावल की खीचड़ी इस तरह समाप्त हो गई, जिस तरह सागर की भयंकर लहरों में एक बुदबुदा समाप्त हो जाता है। जब हम हार कर उस बगीचे की कोठी से बाहर निकले, तब तुम तुम्हारी कूटनैतिक विजय पर कुटिल मुस्कराहट लिए खड़े थे और हम बेबसी से मुँह नीचा किये चोट खाए हुए व्यक्ति की तरह जा रहे थे।

''भाई साहब! आपकी बुद्धि की कुशाग्रता की मैं

तारीफ किये बिना नहीं रह सकता। कैंची-सी चलती है तुम्हारी बुद्धि पर वह काम काटने का ही करती है। षड़यंत्रों के तुम पर संस्कार हैं, क्योंकि इन्हीं के बल पर तुम राजा के यहाँ अपनी जगह बनाए हुए थे। तुमने साधारण दर्जे के राजपूतों में षड़यंत्र चलाये। भला यह तो बताओ क्या लेना था, तुम्हें उनसे। यह तुम्हारी षड़यंत्रकारी बुद्धि सदैव इसी ओर रहती है कि ये साधारण दर्जे के राजूपत कभी सुख से न रहें। तुमने उनके हर संगठन को गिराने की चेष्टा की, हर ऐसे संगठन के विरुद्ध षड़यंत्र किये। खैर यह तुम्हारी पुरानी आदत है, पर मैं तुम्हारे सामने निभा कैसे हूँ जानते हो? क्षमा करने से। मेरे पास इसके सिवाय और कोई चारा नहीं था। अपनी आवाज भी उठा नहीं सकता था। बहुत दिन पहले की बात है, मैं तुम्हारी आयोजित सभा में बोलना चाहता था, पर तुमने तो भोंपू को ऐसे पकड़ लिया, जैसे वह तुम्हारी ओरस सन्तान हो। राजा का सदावृत बन्द हुआ, तब हम लोग राजधानी की ओर उमड़ पड़े।....... तब हमने राजधानी में कुहराम मचा दिया। अश्रु गैस चलाई गई। फौजें शान्ति के लिये बुलाई गई, उस समय तुमने देखा कि ये सामान्य दर्जे के राजपूत तो कुछ कर दिखायेंगे, तब झट से चौराहे पर खड़े-खड़े जुलूस के आगे हो गये। भाई साहब! हम सामान्य राजपूतों के नेता बनने के लिये उस दिन तुम्हारे मुँह में इतनी लार गिरी कि सड़कों पर नाले बहने लग गये।

''उन साधारण दर्जे के सामान्य राजपूतों ने आवाज लगाई, वे जेलों में गये और तुम उनके रास्ता चलते नेता बन गये, क्योंकि उन सामान्य राजपूतों का नेतृत्व तो तुम्हारी बपौती थी, वे क्या करते? तुमने सदावृत के लिये लाखों रुपये देना मंजूर किया। तुम जानते हो कि ये सामान्य राजपूत कभी रुपया नहीं दे सकते और यह सदावृत सदा के लिये तुम्हारे हाथों में रह जाता। हुआ भी ऐसा ही। उस सदावृत को तुमने अपना लिया, कबूतर जैसे अपने अण्डों पर बैठता है, उसी तरह आज तक तुम उस पर बैठे हुए हो। उस जगह की किलेबन्दी से तुम अपनी राजनैतिक लड़ाई में गोलाबारी करते हो। मुझे अच्छी तरह से याद है, जब तुमने एक छोटी-सी घटना को लेकर हमारे संगठन के लिये चाय की प्यालियों में तूफान खड़ा कर दिया था। यह तुम्हारा कितना निम्न स्तर का हथकण्डा था, पर तुम तो अपनी आदत से मजबूर हो।

''मुझे सबसे अधिक दुख तो भाई साहब! तुम्हारी इस बात से है कि तुमने इन राजपूतों के कमाई के साधनों तक का भी दान कर दिया। जरा सोचो तो बदले में तुम्हें क्या मिला-राज्य परिषद की सदस्यता? इस छोटी-सी बात के लिये तुमने कितने बेगुनाह राजपूतों की जिन्दगी से खिलवाड़ की है। काश! तुम यह समझ पाते कि तुमने ऐसा जघन्य पाप किया है, जिसका प्रायश्चित कभी नहीं हो सकता।''

झूठी शान रखने वाले इन स्वार्थी तत्वों व अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये अपने ही भाई-बन्धुओं के साथ षड़यंत्र करने वालों के बारे में पूज्यश्री तनसिंहजी ने कहा-

''जब साधारण दर्जे के इन राजपूतों ने तुम्हारे इस अपवित्र गठबंधन के खिलाफ आवाज उठाई, तब भी तुम अपनी षड़यंत्रकारी आदत से बाज नहीं आए। सच बताओ, जब ये राजपूत भाई जेल जा रहे थे, लाठियाँ खा रहे थे, अपमानित होकर दर-दर भटक रहे थे, उस समय तुम्हारे दिल में बन्धुत्व की भावना तो क्या, उनकी दुखी हालत को देखकर तुम्हारे इस कंस हृदय में कभी दया भी आई थी? सच कहना, भगवान ने तुम्हें जब से आँखें दी हैं तब से इन राजपूत भाइयों के लिये एक भी आँसू बहा है? छोड़ो, ज्यादा कहूँगा तो मेरी वेदना के बाँध टूट जायेंगे और उसमें बह जायेंगे तुम्हारे यह सारे कारनामें।''

झूठी शान और अहंकार में चूर इन तत्वों के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा -

''भाई साहब! मैंने एक संगठन किया है और वह संगठन है हम साधारण लोगों का। इस बात को सोचे बिना कि वह संगठन तुम्हारे और तुम्हारे हित के लिये है, तुम केवल इस बात में उलझे हुए हो कि इसका अगुआ एक

साधारण व्यक्ति है। तो भाई साहब! साधारण व्यक्ति तो मुझे भगवान ने बना दिया, तुम्हारी बराबरी तो कैसे कर सकता हूँ? पर सच मानो, तुम भी अब साधारण व्यक्ति के सिवाय कुछ नहीं हो। एक मनोवैज्ञानिक पृथकता के सिवाय और कोई भेद नहीं, पर मैं जानता हूँ, तुम्हारी नरभक्षी आदत के कारण तुम इस भेद को बनाये रखना चाहते हो, ताकि तुम अब भी अपने आपको बड़ा भाई कहकर अपना जी बहला सको।''

गाँव-गाँव, नगर-नगर अलख जगाते हुए पूज्य श्री तनसिंहजी ने इन षड़यंत्रकारी तत्वों को सचेत करते कहा-

''हम सामान्य राजपूत भाइयों की आदत ईमानदारी से लड़ने की होती है, इसलिए तुम्हारे अवसान से पहले तुम्हें उस खतरे से अवगत कराना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जो तुम्हारे घर में ही पैदा हो गया है। तुम्हारे पुत्र जिनको कल तक तुम कुँवर साहब कहा करते थे, वे अब जोरों से सामान्य राजपूत भाई बनते जा रहे हैं, एक-आध साल में तुम्हारे घर में ही कुछ ऐसे ही पागल भाई-बन्धु बनने वाले हैं जो इस संगठन की तुम पर निर्णायक विजय के आधार स्तम्भ कहलाएंगे।

''सामान्य राजपूत भाइयों के जीवन का एक इतिहास है। वे सदा पराजित रहे, पर जब कभी भी विजयी हुए हैं, उन्होंने पराजितों पर सदा उदारता दिखाई है। इस समय मेरे दिल में भी तुमसे बदला लेने का कोई इरादा नहीं है, मुझे तो केवल एक ही भय है कि समय आने पर तुम्हीं हमारे किए कराये पर पानी न फेर दो। पर मैं जानता हूँ और इसीलिए निश्चिन्त हूँ कि मैंने तुम्हारे घर में आक्रमण कर दिया है और एक दिन आएगा तब मुझे छुटभइया कहना भूल जावोगे और अपना मानोगे। समय तुम्हारी आँखें अवश्य खोलेगा और समय के कहने पर तुमने अपनी आँखें न खोली तो वह तुम्हारी आँखें फोड़ देगा। मैं जानता हूँ, तुम इस प्रकार के राजनैतिक सूरदास कभी नहीं बनना चाहते। परन्तु अब मैं भविष्य का भय बताकर तुम्हें किसी बात के लिये मजबूर नहीं करना चाहता।''

(क्रमशः)

बुराई का जोर बुरे पर

दो भाई थे। एक भूत की पूजा करता था, दूसरा भगवान की। भूत भगवान की पूजा करने वाले भाई को नाना प्रकार के लोभ-प्रलोभन दिखाता था, जिससे कि वह उसकी ओर आकृष्ट हो; परन्तु जब वह भाई इनसे विचलित नहीं हुआ तब वह भूत उसे तरह-तरह से डराने लगा। परन्तु जब इससे भी वह भाई अपनी भगवद् भक्ति में अटल रहा, तब तो भूत बड़ा निराश हुआ। एक दिन भूत ने अपनी पूजा करने वाले भाई को स्वप्न दिया और कहा, ''देख अपने भगवान की पूजा करने वाले भाई को मना ले वरना तुझे मार डालूंगा।'' भूत भक्त भाई ने कहा,-''वाह, यह खूब रही! मैं तुम्हारी पूजा करूं और तुम मुझे ही मारो।'' भूत ने कहा,-''क्या करूं, मेरा वश तुम्हारे ऊपर ही चलता है, क्योंकि वह दूसरा तो मुझे मानता ही नहीं।''

शैतान का जोर शैतान पर ही चलता है। जिसमें शैतानियत नहीं, उसका शैतान क्या बिगाड़ सकता है। काम, क्रोध, लोभ ही बड़े शैतान हैं। गीता ने इन्हीं तीनों को नरक के द्वार बताये हैं, परन्तु इन तीनों में से एक को भी जो अपने अन्दर घर करने नहीं देता, उसका कोई क्या बिगाड़ सकता है।

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–प्रोफेसर रूपसिंह लिम्बड़ी

अवतरण–29

हम देख नहीं रहे हैं संघर्ष की उस चिर परम्परा को! धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य; न्याय और अन्याय, भलाई और बुराई का अस्तित्व क्या समाप्त हो गया? दैवी और दानवी शक्तियों का द्वन्द्व किस युग में नहीं हुआ, किस युग में नहीं होगा? फिर कौन कह रहा है–अब क्षात्रधर्म की आवश्यकता नहीं? वे लोग जो ईश्वरीय विधान को समझने में असमर्थ हैं और वे लोग भी जो जानते नहीं कि यह संसार द्वन्द्वात्मक है।

सत्य, न्याय नीति का क्षत्रिय रक्षणहार।
असत्य, अन्याय, अनीति का वीर मारणहार।।

सृष्टि के उत्पत्ति–काल से ही संघर्ष भी उत्पन्न हुआ है। सत्युग से कलयुग तक का इतिहास बता रहा है कि कोई भी युग संघर्ष रहित नहीं रह पाया है। जहाँ संघर्ष है, वहाँ दो वर्ग हैं। पीड़ित और पीड़ा देने वाला। संघर्ष में, स्पर्धा में सफलता, विजय पर ही लक्ष्य रहता है। वहाँ सत्य–असत्य, न्याय–अन्याय, नीति–अनीति नहीं देखी जाती है। जब पीड़ादायक वर्ग पीड़ित पर अत्याचार करता है तो पीड़ित की रक्षा अनिवार्य हो जाती है। जहाँ रक्षा का प्रश्न आया है वहाँ क्षत्रिय ही याद आता है। पीड़ितों की, दुर्बलों की, असहायों की रक्षा करना ही क्षात्रधर्म है। क्षात्रधर्म की आवश्यकता प्रत्येक युग में रही है और रहेगी ही।

प्रकृति द्वन्द्वात्मक है। द्वन्द्व ही संघर्ष का कारण है। प्रकृति में तीन गुण हैं। सत्वगुण, रजस् गुण और तमस् गुण। इनमें सत्व और तम में सदा संघर्ष हुआ करता है। इस संघर्ष में रजस् गुण का विशेष महत्त्व है। रजस् गुण जिसकी सहायता करता है, वह संघर्ष में विजयी होता है। यदि रजस् गुण सत् की रक्षा करता है, तो सत की विजय होती है और यदि रजस् तम की सहायता करता है तो तम की विजय होती है। क्षात्रशक्ति रजस् प्रधान है। क्षत्रियों में रजोगुण की प्रधानता है। रजस् गुण प्रधान क्षात्रशक्ति जब सत्वोन्मुखी बनती है, सत की सहायक बनती है, तो जगत में सुख, शान्ति और सुरक्षा का अनुभव होता है। वही शक्ति यदि तमस् की सहायक होती है तो तमस् सर्वत्र विनाश और तबाही कर देता है।

संसार द्वन्द्वात्मक है। संसार में ईष्ट और अनिष्ट का, अच्छे और बुरे का, सत् और असत् का संघर्ष सदैव चलता रहा है। परमात्मा ने क्षात्रधर्म का सृजन किया है। क्षात्र स्वभाव का सृजन किया है, इसका मूल कारण यही है कि जब सत्–असत्, अच्छे–बुरे, ईष्ट–अनिष्ट में संघर्ष हो तो सत् की, अच्छे की, ईष्ट की रक्षा की जाए। गीता में भगवान ने यही बात कही है–***परित्राणाय साधूनाम्।*** शुभ की रक्षा करने के लिये भगवान जब–जब इस धरती पर आए हैं, क्षत्रिय जन्म लेकर आए हैं। शुभत्व की रक्षा, उसकी पुष्टि और वृद्धि करना ही क्षात्रधर्म है। शुभ की रक्षा के लिये यदि अशुभ को दण्ड देना पड़े तो देना ही चाहिए।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में राजा (क्षत्रिय) को भगवान का स्वरूप और भगवान तुल्य माना जाता था। आज भी उन प्राचीन राजाओं की मूर्तियों की पूजा की जाती है। परमात्मा ने हमें गुण और शक्ति तो प्रदान की है परन्तु उसके उपयोग की स्वतंत्रता दी है। उपयोग की इस स्वतंत्रता के कारण आज हम अपनी शक्ति का सदुपयोग करना भूल गए हैं। पू. तनसिंहजी के एक गीत की पंक्ति है– ***मग भूल गया है जो, उसका नहीं कोई रे।*** इस पंक्ति में हमारे मार्ग भूलने का संकेत है।

ईश्वरीय आदेशानुसार क्षत्रिय का कर्तव्य है कि सत्य, न्याय, धर्म और सदाचार की रक्षा करें। यही क्षात्रधर्म है। वर्तमान में हमारी निष्क्रियता के कारण ही असत्य, अन्याय, अधर्म और हर प्रकार का दुराचार, भ्रष्टाचार पनप गया है और आज वह हमें अपनी लपेट में लेने पर उतारू हो गया है।

'मेरी साधना' का साधक कहता है-दैवी और दानवी शक्ति के बीच किस युग में संघर्ष नहीं था? और कौनसा ऐसा युग होगा जिसमें यह संघर्ष नहीं रहेगा। संघर्ष तो निरंतर चलता ही रहेगा। लेकिन इस संघर्ष में दैवी शक्ति को विजयी बनाने और दानवी शक्ति को पराजित करने का उत्तरदायित्व ईश्वर ने क्षत्रिय को दिया है। क्षात्रधर्म क्षत्रिय के लिये किसी युगविशेष का धर्म नहीं है। वह तो क्षत्रिय का शाश्वत धर्म है। क्षत्रिय को जन्म के पश्चात क्षात्रधर्म से दीक्षित नहीं किया जाता है। वह तो क्षात्रधर्म से दीक्षित होकर ही जन्म धारण करता है। और अपने इस जन्मजात स्वाभाविक-सहज धर्म पालन का उत्तरदायित्व प्रत्येक क्षत्रिय को गंभीरतापूर्वक निभाना चाहिए। इस पर व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से चिन्तन करने का समय आ गया है। पू. तनसिंहजी की इस उक्ति को याद करें,- ***आओ जरा से बैठकर चेतना नई भरें, सोचना शुरू करें।*** श्री अजीतसिंहजी धोलेरा ने भी इस भाव की गीत रचना की है। उस गीत की भी पंक्ति इसी बात को दोहराती है, हमें पुकारती है- ***आओ बन्धु सब मिलकर क्षण भर सब भूलकर, बैठकर करें विचार, हो नव चेतन संचार।***

इस अवतरण में हमारे लिये वर्तमान स्थिति पर चिंतन करने नव स्फूर्ति, नव चैतन्य के लिये चिंतन करने का संदेश है। शायद हम मार्ग भूल गये हैं जो मार्ग पर आने का संदेश है। साधक का प्रश्न है कि कौन कहता है कि इस युग में क्षात्रधर्म की आवश्यकता नहीं है? स्वयं उसका उत्तर देते हुए साधक कहता है, वे लोग जो ईश्वरीय विधान को समझने में असमर्थ हैं और वे लोग भी जो जानते नहीं हैं कि संसार द्वन्द्वात्मक है।

कभी-कभी वर्ग-विहीन समाज की बातें होती रहती हैं, ऐसे लोगों को मालूम नहीं है कि वर्ण व्यवस्था गुण पर निर्भर है। और गुण ही कर्म का आधार है। जब तक संसार में गुण रहेगा, तब तक गुणों पर आधारित प्रवृतियाँ रहेगी, क्योंकि गुण प्रकृति के हैं और प्रकृति संसार में स्थायी हैं। अतः संसार में द्वन्द्व, संघर्ष चलता ही रहेगा। जब तक संघर्ष होता रहेगा तब तक क्षात्रधर्म की आवश्यकता रहेगी ही।

निज को न बनाया तो, जग रंच नहीं बनता।

– पू. तनसिंहजी

अवतरण-30

मैं सुनूँ-पूर्वजों का उपालम्भ, ऋषियों का आदेश, राष्ट्र की पुकार, समाज का क्रन्दन, दुष्टों का अट्टहास और आत्मा की ध्वनि।

मैं देखूँ-विध्वंस का नृत्य, सर्व-नाश का दृश्य, सत्य का दमन और जीवन का पतन।

अनुभव करूँ...इनके प्रति भारी उत्तरदायित्व को, मोटी ऋण राशि को, कृतज्ञता और अल्पज्ञता को।

प्रयत्न करूँ...उत्तरदायित्व वहन करने, ऋण से उऋण होने का, कृतज्ञता-प्रकाशन और अल्पज्ञता विसर्जन का....आत्मा की आहुति और जीवन का दान करके।

सुनकर उलाहना, आदेश, पुकार,
देकर आत्म बलि, मैं उठाऊँ ललकार।

मेरी साधना का प्रधान लक्ष्य है वर्तमान क्षत्रियों को अपने क्षात्रधर्म, अपने कर्तव्य पालन का स्मरण कराना। इसके नाना अवतरण हमें अपने जातीय प्रभाव को प्रबल बनाने की स्फूर्णा देते हैं।

इस अवतरण में साधक को अपने क्षात्रधर्म की विस्मृति के कारण अपने पूर्वजों का उलाहना सुनाई पड़ता है, ऋषियों का आदेश और राष्ट्र की पुकार तथा समाज का क्रन्दन सुनायी देता है। दुष्टों का अट्टहास और अपनी आत्म ध्वनि सुनाई देती है। यह सूक्ष्म पुकार है। नीरव ध्वनि है। यह केवल साधक को ही सुनाई देती है। स्थूल आवाज तो सब सुन सकते हैं। अन्तर्नाद सुनने के लिये प्रज्ञा चक्षु की भाँति प्रज्ञा श्रवण चाहिए। ऐसा श्रवण और ऐसी समझ साधारण नहीं है। वह असाधारण व्यक्ति को ही सुनाई देता है। साधक को सुनाई दिया, समझ में आ गया।

धर जातां धरम पलटतां त्रिया पड़ंता ताव।
ये तीनों दिन मरण रा का रंक का राव।।

धर अर्थात् धरा, अर्थात् भूमि। जब कोई हमारी भूमि छीन ले; धरम पलटतां अर्थात् धर्म में परिवर्तन होना, धर्म का स्थान अधर्म ले ले एवं त्रिया अर्थात् नारियाँ, औरतें, हमारी बहू-बेटियाँ और माताएँ-बहनें, इन पर प्रताड़ना हो, इनको पीड़ा दी जाती हो, ये तीनों प्रसंग हमारे लिये अपने आप को कुर्बान करने का समय है। इन तीनों का साक्षी होने की बजाए भूमि की, धर्म की और नारियों की रक्षा करने में मर जाना ही श्रेष्ठ है। इसमें राजा और रंक का भेद नहीं है। क्षत्रिय शासक है या साधारण है, दोनों का यह धर्म है।

राष्ट्र को आजादी मिली, बहुत अच्छा हुआ। विदेशी शासन से मुक्ति मिली। स्वदेशी लोकतंत्रीय शासन प्रणाली स्थापित हुई, बहुत ही खुशी की बात है। परन्तु हुआ क्या? हमारी जमीन, जागीर, शासन, सत्ता सब छीना गया, धरा गई, धर्म कहाँ है? स्त्रियों की क्या स्थिति है? सरे आम इनकी इज्जत लूटी जा रही है। बलात्कार करके हत्या कर देना, अपहरण करना, न जाने उन पर क्या-क्या बीत रही है। यह समय है जब त्रिया हर तरह का ताप सहन कर रही है। लेकिन हम चुपचाप बैठकर सब देख रहे हैं। कहीं से कोई सबल प्रतिकार नहीं हो पा रहा है। 'समय बलवान है' 'समय बदल गया है' इस प्रकार की मानसिकता का सहारा लेकर, संयोग, परिस्थिति का हवाला देकर अपनी कमजोरी को छिपने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हैं।

पूर्व में अवतरण पच्चीस में साधक ने कहा था कि- ***आचरण-हीन ज्ञानी ईश्वर द्वारा प्रेषित संघर्ष के कटु अवसर से बचने के लिये सदैव ज्ञान का दुरुपयोग करते हैं।*** इसी बात को विस्तार से बताया गया है। ऐसे लोगों को हमारे पूर्वजों ने 'कायर' कहकर उलाहना दी है। हमारे राष्ट्र कवि स्व. रामधारीसिंह दिनकर ने अपने महाकाव्य 'कुरुक्षेत्र' में कहा है-'अन्याय सहकर बैठे रहना महादुष्कर्म है......।' 'बदला जड़ चेतन का अधिकार है। छूने पर आग जलाती है।' फिर प्रभु से कहा है-'युधिष्ठिर को अपने पास रख लो, हमें गांडीव धारी अर्जुन को लौटा दो।'

'जब शासन परिवर्तन होता है तो इन सबका होना स्वाभाविक है। परिस्थितिवश बदलते हुए समय को ध्यान में रखकर उलट-पुलट में संघर्ष से कोई लाभ नहीं है।' ये आचरणहीन ज्ञानियों का मत है। इन ज्ञानियों को हमारे पूर्वजों की उलाहना, उपालम्भ को साधक ने सुना है। और फिर ऋषियों का आदेश सुनाई दिया। क्या है आदेश? अपने क्षात्रधर्म को भूल गए? अपने कर्तव्य से विचलित हो गए? अपने क्षात्रधर्म का पालन करो, अपने विरुद की शोभा बढाओ। क्या है विरुद? 'रक्षणहार, गौ-ब्राह्मण प्रतिपालक, प्रजा पालक, प्रजा रक्षक' ये हैं आपके विरुद। इसका गौरव रखो, यह ऋषियों का आदेश।

राष्ट्र की पुकार सुनने की क्षमता हम में रही नहीं। समाज का क्रन्दन हम क्या सुनेंगे? हम स्वयं आक्रन्द कर रहे हैं। दुष्टों का अट्टहास हमें अवश्य सुनाई देता है, परन्तु क्या करें, यह समझ नहीं पा रहे हैं।

साधक को आत्म ध्वनि अवश्य सुनाई दी, जिसके फलस्वरूप ही 'मेरी साधना' हमारे हाथों में आ गई है। ये ऊपर की सारी बातें सुनकर, पढकर क्या ऐसा नहीं लगता है कि हम सर्वनाश की तरफ बढते जा रहे हैं। यदि हमें ऐसी स्थिति नजर नहीं आती है, तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारी क्षात्र-दृष्टि भी क्षीण होती जा रही है।

मानव जीवन दिन प्रतिदिन कितना गिरता जा रहा है। भले ही हमारे राष्ट्रीय जीवन का सूत्र ***सत्यमेव जयते*** हो परन्तु वास्तविकता में तो सत्य का दमन ही देखा जा रहा है। हमारे राष्ट्र-जीवन का कोई भी क्षेत्र भ्रष्टाचार, दुराचार, अन्याय, असत्य और अनेक अनैतिक तथा गैर कानूनी कृत्यों से अछूता नहीं रहा है। ऐसी स्थिति में जो क्षात्रधर्म का साधक है, क्षत्रिय है, वह अपने भीतर कहीं न कहीं अपने को इसका उत्तरदायी महसूस करता है। उसे लग रहा है मेरी अल्पज्ञता और कृतज्ञता के प्रकाशन का विलम्ब ही इसका कारण है। वह उत्तेजित हो उठता है, अपनी अल्पज्ञता के विसर्जन के लिये, अपनी कृतज्ञता के प्रकाशन के लिये। वह कहता है कि इसके लिये मुझे अपने अज्ञान और अज्ञान-जन्य अहं तथा संकुचितता का विसर्जन करना होगा।

उसे स्मरण होता है उन पूर्वजों का जिन्होंने अपनी आत्माहुति और जीवनदान देकर न केवल मानव की अपितु पशु-पक्षी, जड़-चेतन, सृष्टि के प्रत्येक सृजन की रक्षा की और पोषण किया। वृद्धि की जीवन मूल्यों की, संस्कृति की, धर्म की रक्षा के लिये अपने आपको मिटा भी दिया। और उनके उस महाबलिदान के फलस्वरूप ही आज हमें समाज में सम्मान, आदर मिलता है और 'बापु' जैसे उद्‌बोधन का अधिकार भोग रहे हैं।

अपनी आने वाली पीढ़ी, भावी पीढ़ी को यह संदेश पहुँचा कर उनके क्षत्रियोचित व्यक्तित्व के, चरित्र के निर्माण के लिये क्षत्रिय युवक संघ के माध्यम से उनको तैयार करना होगा। क्षत्रिय युवक संघ की शाखाओं द्वारा, शिविरों द्वारा किए जा रहे इन प्रयत्नों का मूल्य आंकना होगा। इस पर गंभीरतापूर्वक चिंतन करने का समय आ गया है।

दुख और कठिनाइयों का इतिहास ही सुयश है,
मुझको समर्थ कर तू बस कष्टों के सहने में।

अवतरण-31

मैंने अपने समाजालय को खूब टटोला तो क्या देखता हूँ... वह तो बहुत पहले ही जीर्ण हो चुका है। इसकी नींवों में दीमक और प्राचिरों में आर्द्रता व्याप्त है। छत के मानसिक तन्तु अत्यन्त ही अस्त-व्यस्त होकर अन्दर निषिद्ध तत्वों का प्रवेश करा रहे हैं। और साथ के साथ यह आलय तो भीतर से अपवित्र भी है। तो कैसे स्थापन करूँ इसमें अपने आराध्य देव को? मुझे बाह्य स्वरूपाकृति से वास्तव में धोखा हो गया था।

इस अवतरण के पूर्व अवतरणों में साधक के क्षत्रिय, क्षात्रधर्म, क्षात्रकर्म एवं क्षात्र परम्परा के विषय में अपने मनोगत भावों की अभिव्यक्ति की है। इस अवतरण में साधक भावुकता, भाव जगत से परे संसार की, व्यावहारिक जगत की वास्तविक भूमि पर विचार-यात्रा चिंतन-यात्रा करता है। अपने समाज की वास्तविकता के परीक्षण, निरीक्षण के आधार पर समाज की वर्तमान स्थिति का चित्र प्रस्तुत करता है। हो सकता है हमारी वर्तमान स्थिति का शब्द चित्र हमें रुचिकर न भी लगे। किन्तु वास्तविकता को स्वीकार करने न करने से, हमें स्थिति रुचिकर-अरुचिकर लगने से यथार्थता में कोई फर्क नहीं पड़ता है। यहाँ साधक ने समाज की स्थिति की वास्तविकता दिखाने के लिये एक रूपक का सहारा लिया है। समाज को एक भव्य भवन का रूप दिया है। यह भव्य भवन किसी समय में भव्य था। आज वह खण्डहर नजर आता है। उसकी नींव में दीमक और प्राचीरों में आर्द्रता व्याप्त है। उसकी दीवारों में दरारें पड़ गई हैं और छत बिल्कुल क्षत-विक्षत हो गई है। ऐसा भवन निवास के योग्य नहीं है। मालूम नहीं कब ढह जाए, धंस पड़े।

यह एक रूपक है। नींव का मतलब है, समाज का जन साधारण-आम आदमी। दीवारों का अर्थ है समाज के कार्यकर्ता वर्ग और छत है समाज का नेतृत्व। हमारे नेता हमारी छत है। इसे थोड़ा अधिक खोलकर कहा जाए तो आज हमारा आम आदमी, जन साधारण, जो समाज का मूल आधार है; उसमें त्याग, बलिदान, कर्तव्य पालन का अभाव प्रतीत होता है। वह अपने निजी स्वार्थ से काम करता है। अन्य के हित की अपेक्षा अपने हित के लिये अधिक उत्साही है।

दीवार का अर्थ है हमारे कार्यकर्ता, जो समाज के लिये कार्य करने वाले हैं, वे सेवा के बदले में कुछ न कुछ चाहते हैं। अपने में एक अहं लिए हुए हैं कि हम समाज के लिये कार्य करते हैं, हमारा सम्मान होना चाहिए। हमें आदर मिलना चाहिए। हमें सुविधाएँ मिलनी चाहिए इत्यादि अनेक प्रकार की अपेक्षाएँ रखते हैं। व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की, पद की और अपने निजी काम की अग्रता चाहते हैं। प्रशंसा चाहते हैं।

छत का अर्थ है हमारा नेता वर्ग। नेता बहुत हैं, बड़ी संख्या में हैं परन्तु उनकी बुद्धि स्वस्थ और स्थिर नहीं है। वे आपस में टकराते हैं। अपने नेतृत्व के गुणों के द्वारा समाज को, कार्यकर्ताओं को संगठित करके उचित दिशा में ले जाने के बदले अपनी संकुचित वृति से अपने-अपने गुट बनाकर समाज को क्षत-विक्षत कर रहे हैं। उचित नेतृत्व

के अभाव में समाज में अनेक निषिद्ध तत्वों का प्रवेश हो चुका है। ऐसा नहीं है कि समाज में सामाजिक संस्थाओं का अभाव है। अनेक छोटी-बड़ी संस्थाएँ स्थापित हो चुकी हैं। बार-बार उनकी सभाएँ, सम्मेलन भी होते हैं। प्रस्ताव पारित होते हैं, किन्तु कार्यान्वित नहीं होते। ऐसा क्यों है? इस पर विचार करना चाहिए।

साधक की साधना में एक समस्या आ खड़ी हुई है। क्या है यह समस्या? समाज भवन की छत के मानसिक तन्तु तो अत्यन्त अस्त-व्यस्त हैं ही और इसमें अनेक निषिद्ध तत्वों का प्रवेश हो जाने के कारण यह भवन, यह आलय भीतर से अपवित्र भी हो गया है। अब इसमें अपने आराध्य का स्थापन कैसे किया जाए? कौन है साधक का आराध्य देव? इस आलय, समाज भवन में वह क्यों उसका स्थापन करना चाहता है? यह आलय है, समाज भवन है समग्र भारत में व्याप्त क्षत्रिय समाज। और आराध्य देव है क्षात्रधर्म, क्षत्रियोचित जीवन व्यवस्था। परन्तु वर्तमान समाज की मानसिकता परम्परागत क्षात्रधर्म के पालन के लिये तत्पर नहीं है। क्योंकि क्षात्रधर्म की नींव त्याग और बलिदान है और वर्तमान युग भोग एवं संग्रह का युग है। स्वार्थ परायणता इस युग का प्रधान लक्षण है। 'सर सलामत तो पगड़ी बहुत' वाला यह युग है। क्षात्रधर्म की स्थापना और आचरण करने में बहुत विघ्न हैं। बाह्य स्वरूप से धोखा खाया जा सकता है। हमारी नाम रूप आकृति यद्यपि वही है, किन्तु आंतरिक तत्व, गुण बदल चुके हैं। आकृति वही है, वृति में परिवर्तन हो गया है। नाम वही है, नाम ने अपने गुण की सार्थकता छोड़ दी है। हम परमात्मा से प्रार्थना करें कि हमें अपने समाज में स्वरूप और स्वभाव की एकता प्रदान करने की कृपा करें।

अवतरण-32

मेरे देखते ही देखते वह समाज-भवन ढहने लगा। भगवान राम और कृष्ण, कर्ण और युधिष्ठिर, बुद्ध और चन्द्रगुप्त का समाज इतना निर्बल, पंगु, साहसहीन, निर्लज्ज और मूढ निकलेगा, यह विचारातीत था। पर मैंने देखा उसका चतुर्मुखी पतन उन आँखों से जिनसे कभी विश्वविजय, वैभव-विलास और सर्वोत्कर्ष के सुखद युग देख चुका था। मैं लज्जित हूँ, कुछ भी नहीं कर सका। कायर की भाँति मैंने अपने शत्रुओं को कोसना आरम्भ किया। मैं तिलमिला उठा पर क्रोध से नहीं, वेदना से।

राम कृष्ण की संतान इतनी पामर
निर्बल, पंगु, मूढ क्यों?

गत अवतरण में साधक ने जीर्ण-शीर्ण समाज भवन की वास्तविकता का शब्द चित्र प्रस्तुत किया। भव्य भवन मलबे में बदल गया है। अपने भव्य भवन का भग्न चित्र देखकर साधक अपनी व्यथा और वेदना व्यक्त करता है, जिसे पढकर, सुनकर हमें भी असह्य वेदना होती है। अपने समाज के लिये प्रयुक्त विशेषणों से कई भाइयों का खून खौल जाता है। तीव्र भाषा में प्रतिभाव भी देते हैं। परन्तु उच्च आदर्शों की यथार्थता दिखाने के लिये कोई कर्मशील नहीं बनता है। अगर मुट्ठी भर लोग भी यह बताने निकल पड़ते कि जितना बताया जाता है, उतना गिरा हुआ हमारा समाज नहीं है। आज भी हमारी रक्त वाहिनियों में वह रक्त दौड़ रहा है। अब भी हमने अपना सामर्थ्य, अपनी क्षमता खोई नहीं है। यदि प्रसंगों पर यह बताया जाता तो साधक की दिव्यात्मा प्रसन्न-प्रसन्न हो जाती। परन्तु साधक ने समाज का जो निरीक्षण किया, अध्ययन किया तो उसे समाज का जो चित्र दिखाई दिया उससे वह वेदना से कराह उठा। समाज का जो चित्र साधक ने प्रस्तुत किया है, वह समाज को हीन दिखाने के उद्देश्य से नहीं किया है, किन्तु हमारी वर्तमान स्थिति की वास्तविकता दिखाकर इस परिस्थिति से ऊपर उठने के लिये समाज को जाग्रत करने के हेतु से प्रस्तुत किया है। स्थिति की गंभीरता को समझकर आगामी पीढ़ी के उत्थान के उपाय सोचने का समय अब आ गया है। पूज्य श्री तनसिंहजी ने हमें मार्ग बता दिया है, इतना ही नहीं, उस मार्ग पर स्वयं चलकर हमें मार्गदर्शन दिया है। क्षत्रिय युवक संघ वह राजमार्ग है जिस पर चलकर हम अपनी मंजिल पर पहुँच सकते हैं।

साधक ने ठीक ही कहा है कि जिन आँखों से

वर्तमान स्थिति मैं देख रहा हूँ, उन्हीं आँखों से विश्व विजय, वैभव-विलास और सर्वोत्कृष्ट सुखद युग भी देख चुका हूँ। क्षत्रिय समाज की वर्तमान स्थिति देखकर वेदना होती है। लज्जित हो रहे हैं, लेकिन कुछ कर भी नहीं सकते हैं। शत्रुओं को, युगीन-परिस्थितियों को कोसने से कुछ हाथ लगने वाला नहीं है। निर्बल जाति की निर्बलता को दूर करना आसान है परन्तु बलवान जाति की निर्बलता को दूर करना मुश्किल है; क्योंकि वह अपनी निर्बलता को स्वीकार करना नहीं जानती है। दोष को दोष के रूप में स्वीकार किए बिना निर्दोष होना सम्भव नहीं है। जब अपने दोषों में ही विशेषता दिखाई देने लगे तो फिर दोष दूर करने का विचार ही कैसे आ सकता है?

जब प्रत्येक के हृदय में अपनी दुर्दशा की वेदना उठेगी, पीड़ा होगी तब पुनरोत्थान का मार्ग दिखेगा। आज तो हम जग नियंता से प्रार्थना करते हैं कि हमें पीड़ा दें, हमारी इस अवस्था की व्यथा दें।

थोड़ी धीरज दे, थोड़ी समझ दे,
पर पीड़ा तो पारावार की दे।

पीड़ा से ही पुरुषार्थ निकलता है। वेदना विकास का मार्ग बताती है। पीड़ा पुरुष की समझ को पुष्टता प्रदान करती है। समझ पुख्ता होती है तो पुरुषार्थ निकलता है। रात चाहे कितनी भी लम्बी हो लेकिन रात का अंत सवेरा है। ऊषा की एक ही किरण रात के गहरे अंधेरे को क्षण में दूर कर सकती है। संघ की शक्ति ऊषा की किरण है।

अब ऊषा ने ली अंगड़ाई, इस बस्ती में मस्ती छाई।
अरे कौम के भाग्य में अब तो आया नया प्रभात।
रात भर सोने वाले

★

गुमराह हठीलों के प्रांगण में मैं अलख जगाने आया हूँ।

★

गाफिल तुमको अन्तर की मैं व्यथा बताने आया हूँ।

– पू. तनसिंहजी

(क्रमशः)

जहाँ खोई वहीं खोजने से मिलेगी

अंधेरे में काम करती एक बुढिया की सुई खो गयी। वहीं अंधेरे में वह उसे खोजने लगी। किसी एक ने पूछा,-''माई! क्या कर रही हो?'' ''बेटा! सुई खो गयी है उसी को खोज रही हूँ।'' ''माई! अंधेरे में सुई कैसे मिलेगी, उसे प्रकाश में खोजो।'' तब एक जगह जहाँ प्रकाश हो रहा था, बुढिया सुई उस प्रकाश में जाकर खोजने लगी। एक दूसरे व्यक्ति ने पूछा,-''माई! यहाँ क्या कर रही हो?'' ''बेटा! सुई खो गई है, उसी को खोज रही हूँ।'' ''परन्तु यह तो बताओ, तुम्हारी सुई खोई कहाँ पर है? एक व्यक्ति ने पूछा।''

''बेटा! खोई तो उधर अंधेरे में है, परन्तु एक ने सलाह दी कि प्रकाश में जाकर ढूंढो। अतः प्रकाश में खोज रही हूँ।'' ''माई! ऐसे सुई नहीं मिलने की, जिस जगह सुई खोई है, उसी जगह प्रकाश करो और वहीं उसे ढूंढो।'' बुढिया ने सलाह मानकर आखिर वैसा ही किया और तत्काल उसे सुई मिल गई।

हम जगह-जगह ईश्वर को, अपनी आत्मा को, सच्चे आनन्द को खोजते फिरते हैं, परन्तु वह तो जहाँ बैठे हैं वहीं प्राप्त है। दर-दर भटकने से क्या होगा? यहीं चेतना का प्रकाश करो।

❑ ❑ ❑

जीवन्मुक्ति के लक्षण

– स्वामी यतीश्वरानन्द

जीवन्मुक्ति :

श्रीरामकृष्ण एक दिन अपने प्रिय शिष्य नरेन्द्र, जो आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द के नाम से विश्वविख्यात हुए, के साथ बात कर रहे थे। श्रीरामकृष्ण ने कहा– ''अच्छा वत्स, मान लो कि एक पात्र में रस भरा हो और तुम मधुमक्खी हो, तो बताओ, तुम रस कैसे पीओगे?'' नरेन्द्र ने उत्तर दिया, ''मैं पात्र के किनारे पर बैठकर रस चूसूंगा। यदि मैं अधिक निकट जाऊँगा तो मैं रस में चिपक जाऊँगा।'' इस पर श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए कहा, ''लेकिन बेटा, वह सामान्य रस नहीं है। वह भगवदानन्द का अमृत है। उसमें गिरने वाला डूबता नहीं, अमर हो जाता है।'' श्रीरामकृष्ण ने यह बात ब्रह्मानुभूति के संदर्भ में कही थी। उपनिषद् में कहा गया है, ''ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म हो जाता है।''

आध्यात्मिक अनुभूतियों के विभिन्न स्तर हैं। बहुत कम लोग उनसे गुजरते हुए ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्ति के उच्चतम अनुभव तक पहुँचते हैं। हममें से बहुत से लोग भगवदानन्द का एक घूँट चखते हैं, लेकिन उसमें डुबकी लगाने से घबराते हैं। ब्रह्म के सागर में गहरी डुबकी लगाने का पुरस्कार सचमुच ऐसी ''शान्ति है, जो बुद्धि से परे है।'' वह अनित्य क्षणस्थायी शान्ति के अवसर मात्र नहीं है, बल्कि नित्य आनन्द और गहरी चिरस्थायी शान्ति है।

एक वैदिक ऋषि ने नदी के किनारे खड़े होकर घोषणा की :

शृणवन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्ण तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

अर्थात् ''ओ अमृत के सभी पुत्रों, तथा दिव्यधामों में निवास करने वाले भी सुनो। मैंने अंधकार से परे, उस महान् आदित्यवर्ण पुरुष को जान लिया है। उसे जानकर मानव मृत्यु का अतिक्रमण करता है। मुक्ति का और कोई मार्ग नहीं है।''

भारत के असंख्य सन्तों और ऋषियों ने सदियों से इसी सत्य की शिक्षा दी है। अच्छा, मुक्ति का क्या अर्थ है? हममें से प्रत्येक में जीवन की लालसा और मृत्यु का भयानक रूप रहते हुए भी बहुत कम लोग अपनी वर्तमान दशा में अनन्त काल तक बने रहना चाहेंगे। अमरत्व का अर्थ केवल जीवन काल की वृद्धि ही नहीं है। इसका अर्थ सर्वप्रथम तो चेतना का परिवर्तन है। सामान्य मानव चेतना विषयानुभूति तक ही सीमित है। वह उससे परे नहीं जाती। आध्यात्मिक अनुभूति होने पर सर्वप्रथम चेतनाबोध का परिवर्तन होता है। तब व्यक्ति को अनुभव होता है कि वह देह अथवा मन नहीं है, अपितु आत्मा है। इसके बाद चेतना का विस्तार होता है। तब हम यह अनुभव करते हैं कि हम सर्वव्यापी परमात्मा के अंश हैं और आगे बढ़ने पर यह अनुभव होता है कि ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है।

संसार के सभी धर्म उच्चतर आध्यात्मिक अनुभूति की सम्भावना को स्वीकार करते हैं, भले ही धर्म–व्याख्याकारगण उसके महत्त्व को कम करने का प्रयत्न करते हों। ईसाई धर्म–सिद्धान्त के अनुसार जीव और ईश्वर का पूर्ण मिलन–आध्यात्मिक मुक्ति की श्रेष्ठतम अवस्था–मृत्यु के बाद ही सम्भव है। लगभग यही मत इस्लाम का भी है। इतना होते हुए भी इन धर्मों के कुछ महान् योगी सन्तों ने इसी जन्म में ईश्वर के साथ एकत्व की रहस्यात्मक अनुभूति प्राप्त करने का, तथा परम शान्ति और धन्यता का आस्वादन करने का प्रयत्न किया है।

हिन्दू धर्म में अविद्या तथा उसके अहंकार, राग, द्वेष और दुःखादि परिणामों के चंगुल से इसी जन्म में पूर्ण मुक्ति को जीवन का लक्ष्य तथा उच्चतम आदर्श स्वीकार किया गया है। यह पूर्ण मुक्ति चेतना के रूपान्तरण तथा विस्तार

और अन्त में ब्रह्मात्मैक्य की अनुभूति के द्वारा प्राप्त होती है। इस अवस्था की प्राप्ति मृत्यु के बाद नहीं बल्कि इसी संसार में जीवित रहते करनी चाहिए। इसकी प्राप्ति करने वाला व्यक्ति जीवन्मुक्त कहलाता है। शंकराचार्य अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ''विवेकचूड़ामणि'' में उस सौभाग्यशाली व्यक्ति का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

जिसकी प्रज्ञा स्थिर है, जिसका आनन्द निरवच्छिन्न है, जिसके लिये जगत प्रपञ्च विस्मृत प्राय: हो गया है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। उसकी बुद्धि ब्रह्म में लीन रहती है, फिर भी वह जाग्रत रहता है, पर जो जाग्रतावस्था के अज्ञानादि धर्मों से विवर्जित है, पूर्ण बोधयुक्त होकर भी निर्वासना है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जिसकी संसार-कलना (दु:ख) समाप्त हो गयी है; देहधारी होकर भी जो कलारहित अर्थात् अनन्त है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। इस जगत् के गुण तथा दोषयुक्त और स्वभावत: विलक्षण विषयों में समदर्शिता अर्थात् सर्वत्र ब्रह्मदर्शन जीवन्मुक्त का लक्षण है। इस देह के सज्जनों द्वारा सम्मानित होने पर अथवा दुष्टों द्वारा अपमानित होने पर जो समभाव से बना रहता है, वह जीवन्मुक्त है। जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में जल डालती रहती है, लेकिन समुद्र में विक्रिया नहीं होती, उसी प्रकार दूसरे द्वारा प्रदत्त विषयों से जिसके चित्त में कोई चाञ्चल्य नहीं होता, क्योंकि उसे सदा यह बोध बना रहता है कि एक सत् मात्र वस्तु ही सर्वत्र विद्यमान है, ऐसा व्यक्ति जीवन्मुक्त कहलाता है।

अध्यात्मप्रज्ञा में प्रतिष्ठित व्यक्ति मानव जीवन के साथ अविभाज्य रूप से जुड़े हुए नैतिक द्वन्द्वों के परे चला जाता है। कठोर साधना द्वारा बुरी वासनाओं का त्याग हो जाने के फलस्वरूप उसमें केवल शुभ वासनाएँ बची रहती हैं, जो ब्रह्मज्ञान के उदय के पूर्व उसमें विद्यमान थीं। अथवा शुभाशुभ के समस्त सांसारिक चिंतन के प्रति उदासीन हो, वह अतिचेतनावस्था में विलीन रह सकता है। परमात्मा की इच्छा से इनमें से कुछ सिद्ध-पुरुष करुणा विगलित हो मानव जाति के आचार्यों के रूप में संसार में लौट आते हैं।

ब्रह्म चिन्ता में सदैव अनुरक्त, वे निरिन्धन अग्नि के समान शान्त होते हैं। वे अहैतुक दयासिन्धु तथा प्रणात् सत्पुरुषों के बन्धु होते हैं। वे वसन्त ऋतु की तरह लोक कल्याण में निरत रहते हैं। स्वयं भयंकर संसार सागर से पार होकर बिना किसी हेतु के दूसरों को भी पार करते हैं। दूसरों के दु:ख निवारण के लिये प्रयत्न करना इन महात्माओं का स्वभाव होता है; जिस तरह चन्द्रमा सूर्य की तेज किरणों से तापित पृथिवी को स्वभावत: अपनी शीतल किरणों से तृप्त करता है।

जीवन्मुक्त के लक्षण :

महान् चीनी सन्त कन्फ्यूशियस (या कुंग-फुत्सू) ने कहा है- ''पन्द्रह वर्ष की उम्र में मेरा मन ज्ञानार्जन के लिये लालायित था, तीस की उम्र में मैंने स्थिरता प्राप्त की; चालीस की उम्र में मैं संशयरहित हुआ, पचास वर्ष की वय में मैं ईश्वरीय विधान को जानने लगा, साठ वर्ष की उम्र में मेरे कर्ण सत्य ग्रहण के आज्ञाकारी यंत्र बने और सत्तर वर्ष की उम्र में मैं धर्मविरुद्ध आचरण के बिना अपनी इच्छानुसार आचरण कर सकता था।'' इस कथन के द्वारा वे जीवन के लक्ष्य का, अर्थात् पूर्ण नैतिक मुक्ति की प्राप्ति का वर्णन कर रहे थे। एक मुक्त पुरुष न तो अशुभ प्रवृत्तियों द्वारा और न ही प्रचलित नैतिक विधान द्वारा आबद्ध होता है। पवित्रता उसका इस हद तक स्वभाव बन जाता है कि उसके लिये स्वयं को अनेकानेक आचार संहिताओं से नियोजित करने की आवश्यकता नहीं रहती। श्रीरामकृष्ण की भाषा में वह एक कुशल नर्तक के समान हो जाता है, जिसका पैर कभी बेताल नहीं पड़ता।

जीवन्मुक्त का दूसरा लक्षण है-अहंकार शून्यता। अहंकार हृदय-ग्रन्थियों का निर्माण करता है, वह मानव मन को जटिल, हिसाबी और दुरूह बना देता है। हमारा दूसरों के प्रति दृष्टिकोण हमारे अहंकार की प्रकृति पर निर्भर करता है। उपनिषद् में कहा गया है कि उच्चतम अतिचेतनावस्था की उपलब्धि होने पर हृदय की सारी ग्रन्थियाँ कट जाती हैं और हमारे सारे संशय नष्ट हो जाते

हैं, समस्त नैतिक द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं तथा हम सर्वत्र ईश्वरीय समरसता का अनुभव करते हैं।

एक सिद्ध-पुरुष घृणारहित होता है। उसके लिये दूसरों से घृणा करना असम्भव होता है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है-''जब ज्ञानी समस्त प्राणियों को आत्मा में तथा समस्त प्राणियों में अपनी आत्मा को देखता है, तब इस प्रत्यक्ष अनुभूति के फलस्वरूप वह किसी से घृणा नहीं करता।'' ब्रह्मज्ञानी दूसरों के प्रति प्रेम और करुणा से परिपूर्ण होता है। उसके पास दूसरों को देने के लिये आशीर्वाद के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। उसका प्रेम जाति, कुल अथवा सामाजिक स्तर के द्वारा सीमित नहीं होता। वह सभी को भेदभावरहित हो प्रेम करता है। हममें से कुछ को श्रीरामकृष्ण के कुछ प्रख्यात शिष्यों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। केवल उनमें ही हमें दूसरों के प्रति विशुद्ध नि:स्वार्थ प्रेम दिखाई दिया था। प्रात:काल से देर रात तक वे हमारे कल्याण के विचारों में निमग्न रहते थे।

जीवन्मुक्त भयशून्य होता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है -''अभयं वै ब्रह्म'', अर्थात् ब्रह्म अभय है। एक बार याज्ञवल्क्य ऋषि विदेहराज जनक के पास गये। सम्राट की विनती पर ऋषि ने उन्हें सर्वव्यापी तथा सर्वान्तर्यामी शुद्ध चैतन्य ब्रह्म का उपदेश दिया। शिष्य जनक स्वयं एक उत्तम अधिकारी थे, इसलिए वे सत्य को शीघ्र हृदयंगम कर सके। यह देखकर याज्ञवल्क्य ने उन्हें कहा-''हे जनक! तुमने अभय (की अवस्था) को प्राप्त किया है।''

जैसा स्वामी विवेकानन्द कहते हैं- अधिकांश लोग उस अपराधी की तरह जीते हैं जिसका पीछा किया जा रहा हो। उनके हृदय उन्मुक्त नहीं होते। वे जीवन में इतनी जल्दबाजी में रहते हैं, मानो साक्षात् शैतान उनका पीछा कर रहा हो और वे जीवन के सौंदर्य एवं माधुर्य का कुछ भी उपभोग नहीं कर पाते। वे शान्ति से बैठ नहीं पाते और न ही निर्भय होकर विचरण कर पाते हैं। श्रीरामकृष्ण वचनामृत में सूत बुनने वाली एक महिला की एक रोचक कहानी है। एक दिन उसकी एक सहेली उससे मिलने आई। जब वह उसके लिये जलपान तैयार करने के लिये कमरे से चली गई, तो उसकी सहेली ने रेशमी धागे का एक लच्छा अपनी बगल में छुपा लिया। बुनकर स्त्री जब लौट कर आई, तो उसने तत्काल जान लिया कि धागा चुराया गया है। तब उसने अपनी सहेली को कुछ समय तक एक साथ नाचने का सुझाव दिया। बुनकर स्त्री दोनों हाथ उठाकर नाचने लगी, लेकिन उसकी सहेली एक हाथ उठाकर ही नाचती रही और दूसरे हाथ को शरीर के साथ दबाए रखा। एक मुक्त पुरुष के लिए छुपाने को कुछ नहीं होता और वह निर्भय होता है।

लोगों का जीवन की घटनाओं के सम्बन्ध में अनावश्यक रूप से सोचते रहने का, खतरे को बड़ा करके देखने का, और सदा उत्तेजित बने रहने का स्वभाव होता है। इस प्रवृत्ति का सामञ्जस्यपूर्ण चिंतन और भावनाओं द्वारा प्रतिकार करना चाहिए। भय के बदले हममें साहस होना चाहिए। अस्वास्थ्यकर असहायता के बोध के स्थान पर हमारे लिये स्वास्थ्यकर शरणागति के भाव की आवश्यकता है जो हमें परिस्थितियों के परिवर्तन के बाजवूद शान्त रहने तथा अपने पथ पर अग्रसर होने में सहायक हो सके। मार्च 1940 में जब मैंने बर्जन (नार्वे) से अमेरिका के लिये समुद्र यात्रा प्रारम्भ की, तो प्रथम दिन जहाज पर सदा की भाँति नाच गान होता रहता। दूसरे दिन हमें बेतार के संदेश से नार्वे पर जर्मनी के आक्रमण का तथा बर्जन जैसे बन्दरगाहों पर नाजी सेना के कब्जे का समाचार मिला। इससे जहाज पर उदासी छा गई और सारा गाना बजाना बन्द हो गया। जहाज के कर्मचारी तथा बहुत से यात्री भयभीत और आतंकित हो गए। नार्वे में अपने घरों को लौटने की कोई आशा नहीं रही और साथ ही जहाज पर टारपीडो या बम से आक्रमण की भी सम्भावना थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय पाश्चात्य देशों में मुझसे कई बार पूछा जाता था, ''स्वामीजी, आप इतने शान्त कैसे बने रहते हैं? क्या आपको युद्ध के कष्टों तथा क्रूरता का अनुभव नहीं होता?'' मैं उत्तर देता था, ''चूंकि मैं तुमसे अधिक अनुभव करता हूँ, इसलिए मैं शान्त रहता

हूँ।'' सत्य अथवा काल्पनिक कठिनाईयों का चिंतन करते रहने से और उन्हें बड़ा बनाने से कोई लाभ नहीं। खतरे के समय हमें परमात्मा का चिंतन और अधिक करना, शान्त बने रहना तथा यथासम्भव अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। इस विषय में हमें महापुरुषों के जीवन से सबक सीखना चाहिए। सुकरात की मृत्यु का विचार करो। उन पर ऐसे अपराधों का दोष मढ़ा गया, जो उन्होंने कभी नहीं किए थे और अनुचित तथा मूर्खतापूर्ण अभियोग के लिये उन्हें मृत्यु दण्ड दिया गया था। लेकिन फिर भी उनमें न्यायाधीशों के प्रति कटुता पैदा नहीं हुई। प्लेटो ने 'एपोलोजी' नामक अपने प्रसिद्ध संवाद में सुकरात के मुकदमे का वर्णन किया है। अदम्य साहस और अविचलित सहृदयता के साथ सकुरात ने न्यायाधीशों से कहा :

एथेन्सवासियों, मुझे तुम्हारे प्रति अत्यधिक प्रेम है; लेकिन मैं तुम्हारे स्थान पर भगवान् की आज्ञा का पालन करूंगा तथा जब तक मुझमें शक्ति और प्राण हैं, तब तक अपना कार्य तथा सिद्धान्तों का उपदेश कभी नहीं रोकूँगा एवं मुलाकात करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सदाचार के लिये प्रेरित करता रहूँगा।

सुकरात इन शब्दों को कहकर न्यायालय से चले गये, जो अब विख्यात है-''विदाई का समय आ गया है और हम अपनी-अपनी दिशा में जा रहे हैं। मैं मृत्यु की ओर, तुम जीवन की ओर; भगवान् ही जानता है, कौन सा श्रेयस्कर है।'' मृत्यु की पूर्व सन्ध्या को सुकरात के कुछ मित्रों ने उन्हें कारागार से भाग निकलने का आग्रह किया। लेकिन उन्होंने मना कर दिया। निर्धारित समय आने पर वे सदा की तहर शान्त बने रहे। उन्होंने विष का प्याला शान्त भाव से पी डाला; विष को क्रियाशील बनाने के लिये थोड़ा चले और शान्तिपूर्वक मरने के लिये लेट गये।

पूर्ण पवित्रता, निरहंकारिता, सभी के प्रति प्रेम और करुणा तथा निर्भयता-ये मुक्तात्मा के कुछ लक्षण हैं। इसके साथ ही वह अपने हृदय के अन्तस्थल से यह जानता है कि वह निर्लिप्त और आनन्दमय आत्मा है। ज्ञानालोक होने पर वह उसकी सत्यता को अन्तर्दृष्टि से जान जाता है। जिस प्रकार सूर्य को देखने के लिये दीपक की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार अतिचेतनावस्था का उदय होने पर उसे जानने के लिये किसी बाह्य उपाय की आवश्यकता नहीं होती। ज्ञानी पुरुष परमानन्द लाभ करता है तथा अपनी आत्मा में कृतकृत्यता लाभ कर सदा उसी में लीन रहता है। अतएव वह आत्माराम-आत्मा में रमण करने वाला- कहलाता है। स्वामी विवेकानन्द श्रीरामकृष्ण के भस्मावशेषयुक्त ताम्रपात्र को, जिसकी बेलुर मठ में पूजा होती है, ''आत्माराम का कौटा'' या ''आत्माराम का पात्र'' कहा करते थे।

क्षात्रधर्म की रचना

(बृहदारण्यक-उपनिषद, प्रथम अध्याय चौथा ब्राह्मण-11)

सृष्टि के आरम्भ में था यह केवल एक 'ब्रह्म' अर्थात् वह सत्ता जिसमें बढने की, महान् होने की क्षमता थी। वह अकेला था इसलिए कुछ हो न सकता था। वह 'ब्रह्म' था अर्थात् उसमें बढने की आन्तरिक सामर्थ्य थी; इसलिए अकेला होने पर भी वह बढा, महान् हुआ, उसने श्रेयस रूप को रचा- क्षत्र को अर्थात् क्षात्रधर्म को।

देवों में क्षात्रधर्म के प्रतिनिधि हैं-इन्द्र, सोम, रूद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु, ईशान।

क्षात्रधर्म से बढकर कुछ भी नहीं, इसीलिए राजसूय यज्ञ में, ब्राह्मण क्षत्रिय के नीचे बैठता है, अपने यश को क्षात्रधर्म के सुपुर्द कर देता है।

गुमान कँवर

– ईश्वरसिंह चनाणा

झुंझुनू अधिपति शार्दूलसिंह के पिता जगरामसिंह के दो विवाह एक रावतसर के कांधलोत रावत प्रतापसिंह की पुत्री से तथा दूसरा विवाह मांवडा के तंवर अर्जुनदास की पुत्री कुन्दन कंवर से हुआ था। शार्दूलसिंह का जन्म छिलरी के पास टोंक ग्राम में हुआ था। यह ग्राम जगरामसिंह की जागीर का गाँव था। कुन्दन कंवर ने पति के साथ रहने हेतु गुढ़ा में जाकर रहना चाहा उसी समय जगरामसिंह के अन्य कुमारों यथा कुशलसिंह सुखसिंह एवं गोपालसिंह को जो कि तीनों कांधलोत राणी के पुत्र थे, को घुड़सवारी का अभ्यास करवाया जा रहा था। शार्दूलसिंह उम्र 9 वर्ष द्वारा घुड़सवारी की इच्छा व्यक्त की गई तो उनकी घुड़सवारी के एवज में घुड़की मिली। दूसरा कारण जगरामसिंह कांधलोत राणी को अधिक चाहते थे तथा तंवराणीजी की उपेक्षा की जाती थी। कुन्दन कंवरजी इस प्रकार पति से अनबन चलते अपने पुत्र शार्दूलसिंह एवं सलेदीसिंह को लेकर अपने पीहर मांवडा की ओर बैलगाड़ी से रवाना हो गई। दन्तकथा यह भी प्रचलित है कि इनके चचेरा परिवार इन्हें जान से मार कर इनके हिस्से के साढे पन्द्रह ग्राम हस्तगत करना चाहते थे। इस षड़यंत्र का कुंदन कंवरजी को पता होते ही रात्रि के समय अपने पीहर को प्रस्थान किया। अपने पिता के घर दोनों ही निर्वासित राजकुमारों का पालन पोषण कर क्षत्रियोचित गुणों से ओत-प्रोत कर दिया। अर्जुनदास ने इनका 17 साल की आयु में नाथासर के बीका सरदार मनरूपसिंह की पुत्री से विवाह कर दिया। अपने जीवन के कई उथल-पुथल देखते हुये संघर्षशील रहते रहे। इन्हीं संघर्षों ने इनके जीवन में नई प्रेरणा व जोश भरते हुये उस वक्त की राजनैतिक परिस्थितियाँ का ज्ञाता बना दिया। वह एक कुशल राजनेता व योद्धा का रूप लेता गया।

यहाँ यह वर्णन करना अति आवश्यक है कि संवत् 1757 में कांट ग्राम में इनके एक कुमार का जन्म हुआ जो आगे जाकर जोरावरसिंह नामधारी जबरवीर प्रसिद्ध हुआ है। यहाँ इतना ही वर्णन काफी है कि जो निशान शार्दूलसिंह के ललाट पर अंकित था, वही निशान जन्मते जोरावरसिंह के भाल पर भी आ गया। रनिवास की अन्य रानियों ने विनोदवश कह दिया कि देखेंगे ऐसी सतवत्ती बीकावतजी है तो अन्य सन्तानों के भी यह निशान अंकित होगा? बीकावत जी ने तुरन्त अपने पति से गृहस्थ जीवन से सन्यास का अनुग्रह किया तथा ललाट के चिह्न का वर्णन किया। परन्तु योग की बात है कि उन्हीं बीकावतजी के गर्भ से गुमानकंवरजी का जन्म होता है तथा वही ललाट का निशान पुन: अंकित पाया गया। गुमान कँवरजी का लालन-पालन बड़े ही लाड़ प्यार से हुआ। शार्दूलसिंह के पुत्र अन्य राणियों से अनेक थे किन्तु जोरावरसिंह अपनी बहन को जी जान से चाहते थे। गुमानकंवरजी का विवाह होता है संवत् 1796 में उससे पूर्व ही शार्दूलसिंह की स्थिति राजूपत राजाओं में अत्यनत सुदृढ़ हो चुकी थी। महाराजा जयसिंह जयपुर ने जब बूंदी पर आक्रमण किया तब शार्दूलसिंह व जोरावरसिंह के तलवार की चमक सब देख चुके थे। शार्दूलसिंह ने भी युद्ध में हाडा सरदारों के गाढ़ की कहानियाँ सुनी वे सत्य साबित पाई गई। बूंदी नरेश के राज्य का कुछ भाग (कुछ ग्राम) जयपुर नरेश को देकर सुलह-नामा किया था। शार्दूलसिंह को भी हाड़ा वंश भा गया और अपनी पुत्री का सम्बन्ध इन्द्रगढ़ के राव से तय कर दिया। हाड़ा राव से गुमानकंवर का विवाह संवत् 1796 में सम्पन्न हुआ। गुमान कंवर के बड़े भ्राता जोरावरसिंह के पास घोड़ी थी जिसको युद्ध के समस्त पैंतरे सिखलाये हुए थे। वह थोड़ी ऊँची कूद में अप्रतिम दक्षता रखती थी। युद्ध के दौरान छलांग लगाना, गच्चा खा जाना

सभी कार्यों में पारंगत थी। इस बात का भान हाडा जी को लग गया तो उन्होंने तणी खुलाई में वह घोड़ी मांग ली। जोरावरसिंह ने कहा तबेले में एक से एक अच्छे अश्व बन्धे हैं इसके एवज में पूरा तबेला ले लीजिये। इस बात पर हाडा राव रूठ गये सो रूठ गये। इस पर जोरावरसिंह ने अपनी पाग उनके पाँव में रखी मनाने हेतु, जिसे हाडा राव ने ठोकर मार दी। यह ठोकर जब मारी गई तो विदा होने के लिये गुमानकंवर रथ में चढ़ने ही वाली थी और भ्राता की पगड़ी को ठोकर मारते देख लिया। उसी समय गुमान कंवर ने प्रण कर लिया कि हाडा परिवार के घर का अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगी। जयपुर नरेश के प्रतिनिधि (भाई) ने इस दृश्य और गुमानकंवर की प्रतिज्ञा की बात तुरन्त ही जयपुर नरेश को जाकर निवेदन की। महाराज जयसिंह ने तुरन्त बूंदी राज्य के जीते हुये ग्रामों में दो ग्रामों का पट्टा करके घुड़सवार दौड़ाया जो बूंदी राज्य की सीमा पर बारात आगमन की तैयारी कर रहा था। ज्योंहि हाडा साम्राज्य की सीमा आई नव विवाहिता ने आगे रथ ले जाने से मना कर दिया। इतने में ही जयपुर के संदेश वाहक सवार ने दो गाँवों का पट्टा शेखावत राजकुमारी को भेंट किया। जब तक जिन्दा रही तब तक इसी जगह अपना ससुराल कायम रखा। सुहाग चिह्न के रूप में एक हाडाजी की पाग अपने पास रखी। झुंझुनूं अधिपति के लाख मनाने पर भी गुमानकंवर जी अपनी प्रतिज्ञा से टस से मस नहीं हुई। काफी समय पश्चात अपने पीहर गुमानकंवरजी पधारी हुई थी। कुछ समय यहाँ रहने के पश्चात् वापिस ससुराल के लिये प्रस्थान कर चुकी थी। उदयपुर से कुछ आगे पहुँची ही थी कि सामने से ससुराल के घुड़सवार ने सूचना दी कि राव साहिब हाडा का देहावसान हो गया है। उसी समय उस क्षत्राणी ने अपने पति की पाग के साथ सती होकर शेखावत कुल के गौरव को उज्ज्वल कर दिया। ऐसी ही सतियाँ शत्-शत् नमन योग्य हैं। पू. तनसिंहजी ने कहा है-

जिनके कुल की कुल ललनाएँ कुल का मान बढ़ाती।
अपने कुल की लाज बचाने लपटों में जल जाती है।
यश अपयश समझाती।

आपसी फूट का फल

प्राचीन समय की बात है। वह जंगली युग था। घोड़े व भैंस में लड़ाई हो गयी। भैंस बलवान थी, अपने सींगों से वह घोड़े की मरम्मत करने लगी। घोड़ा अधिक देर ठहर नहीं सका और उसने मनुष्य के पास जाकर सहायता की प्रार्थना की। घोड़े ने मनुष्य से कहा,-''आप मेरे ऊपर बैठ जाइये और चलकर भैंस को मारिये, उसने मुझे बहुत दुखी कर रखा है।'' मनुष्य राजी हो गया, घोड़े पर सवार होकर भैंस को मार-पीट कर घर ले आया और आनन्द से वह और उसका परिवार उसका दूध पीने लगा। इधर घोड़े ने रुखसत मांगी, क्योंकि उसका काम भैंस को पिटवाने का हो चुका था। परन्तु मनुष्य अब उसे क्यों छोड़ने लगा। घोड़े की उपयोगिता उसे अच्छी तरह मालूम हो गयी थी। उसने भैंस के पास ही घोड़े को भी सवारी के काम के लिये बांध दिया। घोड़े और बैल ने एक दूसरे को देखा और पछताये,-''हाय, हम आपस में क्यों झगड़े?''

आपसी फूट दोनों पक्षों को बरबाद कर देती है।

श्रीराम जन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र-न्यास-अयोध्या

- स्वामी गोपालआनन्द बाबा

प्रभु मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र यानी भगवान श्रीराम को वाल्मीकि रामायण में संपूर्ण भारतवर्ष, हिमालय से लेकर समुद्र पर्यन्त तक का पर्याय बताया गया है, जो भारत के जन-जन के सर्वमान्य पूर्वज हैं, अर्थात् सभी भारतीय किंबा हिन्दू-हिंदव-हिन्दवी भगवान श्रीराम के वंशज हैं, जिनका अवतरण-आविर्भाव-जन्म 'अयोध्या' में राजसिंह दशरथ व कौशल्या के सान्निध्य में हुआ। वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड में अवध (अयोध्या) नरेश दशरथ को 'राजसिंह' कहा गया है। पर रामचन्द्र केवल राम ही हैं। श्रीराम के पुत्र लव और कुश के एवं भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के वंशज आज भी भारत में विद्यमान हैं तथा विवस्वान सूर्य के वंशज सूर्यवंशी व राम के पूर्वज रघु के वंशज रघुवंशी नाम से आज भी जाने जाते हैं, पाए जाते हैं। जैसे-मेवाड़ के महाराणा प्रताप को संपूर्ण भारतवासी, स्वतंत्रता का पर्याय मानते हैं, उनकी प्रतिमा स्थान-स्थान पर स्थापित कर गौरवान्वित होते हैं। यह सत्य है कि प्रताप जन-जन के आराध्य लोकदेव बन गए हैं, अत: एक प्रकार से सभी उनके वंशधर हैं, वे केवल प्रताप थे और आज भी प्रताप हैं, इतिहास में उन्हें महाराणा प्रताप ही लिखा गया है। उनके पिताश्री महाराणा उदयसिंह के वंशज राणावत और उनके अनुज राणा शक्तिसिंह के वंशज शक्तावत हैं, लेकिन प्रताप के वंशज सभी हैं।

इलाहाबाद हाईकोर्ट ने एवं दिल्ली सुप्रीम कोर्ट ने श्रीरामजन्मभूमि-स्थान को ही भगवान श्रीराम का जन्म स्थान माना है, जो थाना-जन्मभूमि जनपद-अयोध्या में है। भारत सरकार ने उच्चतम न्यायालय के आदेशानुसार 5 फरवरी, 2020 (ई.) बुधवार, माघ शुक्ला एकादशी, विक्रम संवत 2076, कलियुगाब्द 5121 को भारत के संसद में ''श्रीरामजन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र-न्यास (ट्रस्ट)-अयोध्या'' के गठन हो जाने की घोषणा की। 8 नवम्बर, 2019 को सुप्रीम कोर्ट ने तीन माह के भीतर ट्रस्ट की घोषणा करने के लिये भारत सरकार को कहा था। 88 दिन लगे सरकार को ट्रस्ट गठित करने में। 27 वर्ष और दो माह बाद तम्बू-मंदिर से निकलकर ''रामलला'' अस्थायी मंदिर में विराजमान होंगे पश्चात् यथाशीघ्र भव्य व विशाल मंदिर में जा विराजेंगे।

विश्व हिन्दू परिषद् के द्वारा सन् 1984 ई. में श्रीरामजन्मभूमि का आन्दोलन प्रारम्भ किया गया था और इसे संपूर्ण भारत-व्यापी बना दिया और इसमें ''परिषद'' सफल रहा, जिसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का भी सहयोग रहा; एक प्रकार से भगवान श्रीराम की पुनर्प्रतिष्ठा, पुनर्मान्यता जीवन्त रूप में हुई, जो निश्चित रूप से एक क्रांति है। 'श्रीरामजन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र'-न्यास (ट्रस्ट), अयोध्या (उ.प्र.), एक स्वायत (स्वतंत्र) ट्रस्ट है, जो अयोध्या में भगवान राम की जन्मस्थली पर भव्य राम मंदिर के निर्माण और उससे जुड़े विषयों पर निर्णय लेगा। ज्ञात हो कि यह 'धर्मार्थ बोर्ड' की तरह काम करेगा। मन्दिर एवं इससे संलग्न अन्य महत्त्वपूर्ण निर्माण हेतु अयोध्या कानून के अन्तर्गत अधिग्रहित समस्त भूमि जो 67.703 एकड़ है, जिसमें भीतरी और बाहरी आंगन सम्मिलित हैं, उसे ट्रस्ट को हस्तान्तरित किया गया है तथा मुख्य जन्मस्थान-भूमि 2.77 जो न्यायालय द्वारा 'रामलला विराजमान' को ही दी गई है, वहाँ भी मंदिर निर्माण यही ट्रस्ट करेगा। ट्रस्ट में15 ट्रस्टी होंगे, जिसमें से एक ट्रस्टी सर्वदा दलित (अ.जा.) समाज से रहेगा ऐसा सामाजिक सौहार्द को मजबूत करने के लिये किया गया है। वोट की राजनीति करने वालों को, इस ट्रस्ट से एवं इसके अन्तर्गत बनने वाले उपसमितियों से दूर रखने का परामर्श दिया गया है। वर्तमान में अस्थाई रूप से इस नवगठित ट्रस्ट श्रीरामजन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र का कार्यालय दिल्ली के ग्रेटर कैलाश पार्ट-एक, नई दिल्ली-110048 में ही संचालित होगा। बाद में स्थायी कार्यालय अयोध्या में ही प्राप्त भूमि पर बनेगा।

इस न्यास में 15 सदस्य रहेंगे। भारत सरकार द्वारा घोषित ट्रस्टी (न्यासी) :- 1.वरिष्ठ अधिवक्ता के.

परासरण, जिन्होंने अयोध्या श्रीरामजन्मभूमि मुकदमे में नौ वर्ष तक हिन्दू पक्ष की पैरवी की, मुख्य वकील रहे। 2. जगद्‌गुरु शंकराचार्य स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती जी महाराज (प्रयागराज-आलोपी), बद्रीनाथ स्थित ज्योतिषपीठ के शंकराचार्य। 3. जगद्‌गुरु मध्वाचार्य स्वामी विश्व प्रसन्न तीर्थ जी महाराज, कर्नाटक के उडूपी स्थित पेजावर मठ के 33वें पीठाधीश्वर। 4. युगपुरुष स्वामी परमानन्द जी महाराज, अखण्ड आश्रम हरिद्वार के प्रमुख। 5. स्वामी गोविन्ददेव गिरि जी महाराज, महाराष्ट्र के आध्यात्मिक गुरु पांडुरंग शास्त्री अठावले के शिष्य। 6. विमलेन्द्र मोहन प्रताप मिश्र, अयोध्या राजपरिवार के वंशज व परिवार प्रमुख। 7. डॉ. अनिल मिश्र, बी.एच.एम.एस. अयोध्या के प्रसिद्ध होमियोपैथिक डॉक्टर। 8. कामेश्वर चौपाल (अ.जा), सुपौल (बिहार)-उन्होंने सन् 1989 ई. में श्रीराममंदिर निर्माण के लिये शिलान्यास की पहली ईंट रखी थी। 9. महंत दिनेद्र दास, अयोध्या के निर्मोही अखाड़े के अयोध्या बैठक के प्रमुख। उच्चतम न्यायालय के फैसले में निर्मोही अखाड़े के प्रमुख को भी एक सदस्य रखने का आदेश था। महंत दिनेद्र दास को ट्रस्ट की मीटिंग (न्यास-बैठक) में मत देने यानी वोटिंग का अधिकार नहीं होगा। 10. दसवें सदस्य के रूप में बोर्ड ऑफ ट्रस्टी द्वारा नामित एक व्यक्ति, जो हिन्दू धर्म का होगा। 11. ग्यारहवें सदस्य के रूप में बोर्ड ऑफ ट्रस्टी द्वारा नामित एक व्यक्ति, जो हिन्दू धर्म का होगा। 12. केन्द्र सरकार द्वारा हिन्दू धर्म का एक प्रतिनिधि नामित किया जाएगा, जो आई.ए.एस. अधिकारी होगा। 13. उत्तरप्रदेश सरकार (शासन) द्वारा हिन्दू धर्म का एक प्रतिनिधि नामित किया जाएगा, जो राज्य (प्रदेश) सरकार के अन्तर्गत अधिकारी होगा। 14. अयोध्या जिले के कलेक्टर (डी.एम./डी.सी.) भी सदस्य होंगे, जो हिन्दू धर्म को मानने वाला होना चाहिए, नहीं तो एडीशनल कलेक्टर (अपर समाहर्ता) सदस्य होंगे। 15. ट्रस्टियों के बोर्ड द्वारा 'राम मंदिर विकास' और 'प्रशासन' से जुड़े मामलों के लिये चेयरमैन की नियुक्ति की जाएगी, उनका हिन्दू होना अनिवार्य है।

ज्ञात हो कि इस ''न्यास'' के लगभग सदस्य विश्व हिन्दू परिषद द्वारा संचालित श्रीरामजन्मभूमि-आंदोलन में जुड़े रहे हैं तथा वि.हि.प. मार्गदर्शक मण्डल के सम्मानित सदस्य हैं। पेजावर मठ (उडूपी, कर्नाटक) के मध्वाचार्य स्वामी विश्वेस तीर्थ जी महाराज की भी इस आंदोलन व वि.हि.प. की गतिविधियों में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी परन्तु गत वर्ष 2019 ई. में उनके निधन हो जाने के कारण उनके उत्तराधिकारी स्वामीजी को स्थान दिया गया है। वहीं कांची कामकोटिपीठ-मठ के शंकराचार्य स्वामी जयन्त सरस्वती जी महाराज का भी अनेक वर्ष पूर्व निधन हो गया, जो वि.हि.प. के मार्गदर्शक मण्डल के सदस्य व श्रीरामजन्मभूमि आंदोलन के महत्त्वपूर्ण प्रणेता थे, फिर भी उनके उत्तराधिकारी स्वामी विजयेन्द्र सरस्वती जी महाराज को इसमें स्थान नहीं मिला है। संभव है कि आगे बनने वाली उपसमितियों में इन्हें और ''आन्दोलन'' से जुड़े साधु-महात्माओं-संतों एवं प्रमुख संचालकों को स्थान दिया जाए, यह निर्णय उक्त ट्रस्ट सहित चेयरमैन ही लेंगे। आगामी वि.सं. 2077 क.यु. 5122, चैत्र शुक्ल प्रथमा (वर्ष प्रतिपदा) 25 मार्च, 2020 से लेकर चैत्र पूर्णिमा अथवा अक्षय तृतीया (वैशाख) से श्रीरामलला का मन्दिर वगैरह के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होकर सन् 2023 ई. तक पूरी होने की संभावना है। यह ''तीर्थ क्षेत्र'' विश्वस्तरीय होगा।

वैवस्वत मनु पुत्र विवस्वान सूर्य ने अयोध्या नगर की स्थापना कर अपने बड़े पुत्र इक्ष्वाकु को यहाँ के सिंहासन पर विराजमान किया था और पृथ्वी का शासक घोषित किया था। इसे इक्ष्वाकु नगर भी कहा जाता था। बौद्धकाल में अयोध्या को साकेत नाम भी दिया गया। आशा है सन् 2020 से 2022 ई. तक 'ईक्ष्वाकु नगर' के रूप में विकसित होकर भव्य-दिव्य दिखेगी अयोध्या, दुनिया को मोह लेगी। सामाजिक समरसता के रंग में रंगी रही है, अयोध्या विकसित होने से श्रद्धालुओं, तीर्थ यात्रियों, पर्यटकों की आवाजाही भीड़ के रूप में बढ़ेगी। एयरपोर्ट एवं अन्तर्राष्ट्रीय मानक के अनुरूप अयोध्या व फैजाबाद रेल्वे स्टेशन को विकसित किया जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय स्पोटर्स कॉम्पलेक्स का निर्माण, अयोध्या के

बाहरी हिस्से में रिंगरोड़ के साथ सरयू नदी पर नया पुल बन रहा है। बैराज का निर्माण एवं 251 मीटर ऊँची भव्य राम की मूर्ति की स्थापना तथा दस किलोमीटर लम्बे सरयू घाट का निर्माण होने जा रहा है। पहले से ही एक बड़ी राम मूर्ति को स्थापित किया गया है। गंगा-आरती की तरह सरयू आरती प्रारम्भ किया गया है। दीपावली पर लाखों दीपों का त्रिदिवसीय प्रकाश पर्व विश्व रिकार्ड बना चुका है। पर्यटन सर्किट के रूप में अयोध्या को विकसित करने की योजना धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है, अब इसमें और तेजी आने जा रही है। श्रीराम मन्दिर के साथ ही धार्मिक ही नहीं, पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक संरचनाएँ भी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बनेंगी। इसमें प्राचीन मणिपर्वत, सुग्रीव किला, जैन मंदिर, कनकभवन, श्री हनुमान गढ़ी, राजप्रसाद राजसदन, भरतकुण्ड, दशरथ समाधि-स्मारक, शृंगी ऋषि आश्रम, कामक्ष्यादेवी मन्दिर के अतिरिक्त बेगम मकबरा, गुलाबबाड़ी आदि सम्मिलित हैं। सभी स्थापत्य कला के अद्वितीय नमूने हैं।

श्रीराममंदिर निर्माण के साथ रामनगरी इस कदर भव्यता एवं दिव्यता को प्राप्त होगी कि वह देश और दुनिया को पूर्णतया आकर्षित कर मोह लेगी। यह यूँ ही नहीं है, बल्कि इसके पीछे सामाजिक सद्भाव का वह ताना-बाना है, जो सदियों पूर्व पगा था और अब आधुनिक उन्नति के विविध आयाम से आच्छादित हो रहा है। वह दिन दूर नहीं जब दुनिया-भर के श्रद्धालु व दर्शक-यात्री यहाँ पहुँचने लगेंगे। यह कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि इसके पीछे अयोध्या का पौराणिक महत्त्व और इतिहास छिपा है। सन् 2019 ई. में ही, जबकि अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ हैं, तब भी अयोध्या में 1.5 लाख श्रद्धालु बाहर से पहुँचे। विशेषज्ञों का मानना है कि अगर अयोध्या को बड़ी धार्मिक नगरी के रूप में विकसित कर दिया जाए, तो यहाँ पर्यटकों की संख्या प्रतिदिन 40 से 50 हजार के बीच पहुँच जाएगी।

''श्रीरामजन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र-न्यास''-अयोध्या की स्वतंत्रता का पुख्ता इन्तजाम किया गया है, नियम कायदे बनाने और वित्तीय मामलों में पूरी छूट दी गई है, पर ट्रस्ट के मूल ढाँचे से छेड़छाड़ का अधिकार नहीं है। अधिवक्ता के. परासरन आजीवन ट्रस्ट के सदस्य बने रहेंगे। वास्तव में भारत सरकार ने इस ट्रस्ट को सरकारी हस्तक्षेप से दूर रखने और कामकाज में पूरी स्वतंत्रता देने का पुख्ता बन्दोबस्त कर दिया है। ट्रस्ट को सारी वित्तीय स्वायत्तता दी गई है, लेकिन इसकी किसी भी अचल सम्पत्ति को किसी भी स्थिति में बेचने का अधिकार नहीं होगा। सरकार ने वर्तमान में ट्रस्ट के सदस्यों की घोषणा की है। इसमें गोरक्षनाथ-गोरक्षणपीठाधीश्वर महन्त दिग्विजयनाथ, जो सन् 1947 ई. से जन्मभूमि-मंदिर के लिये सक्रिय रहे थे और बाद में महन्त अवैद्यनाथ भी सक्रिय रहे व प्रमुख भूमिका में थे तथा उनके उत्तराधिकारी महन्त आदित्यनाथ, जो अब मुख्यमंत्री, उ.प्र. सरकार है, का नाम अथवा गोरक्षपीठ के किसी भी नाथ सम्प्रदाय के साधु का नाम नहीं रहना खलता है? साथ ही जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य के रामानन्दी सम्प्रदाय का भी साधु-संत नहीं रहना भी खलता है?

ट्रस्ट के सदस्यों को अपने बीच से अध्यक्ष, महासचिव और कोषाध्यक्ष के चयन की छूट दी गई है। राशि (फण्ड) जुटाकर भव्य राम मंदिर का निर्माण करने से लेकर पूरे तीर्थ के विकास और रख-रखाव के प्रशासनिक तंत्र के विकास और पुजारियों की नियुक्ति ट्रस्ट के विशेषाधिकार में रखा गया है। ट्रस्ट-डीड के अनुसार पदैन व सरकार की ओर से मनोनीत सदस्य के अतिरिक्त 10 सदस्यों में से किसी की मृत्यु होने, इस्तीफा देने या किसी कारणवश हटाए जाने के बाद उनके स्थान पर नये सदस्यों के चयन का अधिकार ट्रस्ट के सदस्यों को ही होगा इसके लिये विशेष बैठक बुलाकर शेष बचे नौ सदस्य बहुमत के आधार पर योग्य व्यक्ति को सदस्य के रूप में चयन कर सकेंगे। लेकिन नए सदस्य का भी हिन्दू धर्मावलम्बी होना अनिवार्य है। लेकिन दलित (अ.जा.) सदस्य का स्थान खाली होने की स्थिति में किसी दलित (अ.जा.) को ही इसके लिये चयन किया जा सकेगा। वहीं निर्मोही अखाड़ा के प्रतिनिधि की जगह खाली होने पर उसे भरने का विशेष प्रावधान किया गया है। चूंकि निर्मोही अखाड़े के एक प्रतिनिधि का होना सुप्रीम कोर्ट ने फैसले में अनिवार्य कर दिया है, इसलिए इसमें उनकी जगह खाली होने की स्थिति

में निर्मोही अखाड़े को अपनी ओर से तीन नामों का सुझाव भेजना होगा। ट्रस्ट इनमें से एक को सदस्य के लिये चयन करेगा। इसी तरह केवल छह स्थितियों में किसी सदस्य को ट्रस्ट के बाहर किया जा सकता है-मृत्यु और इस्तीफे के अतिरिक्त इसमें किसी सदस्य के पागल, दिवालिया, अपराधिक या फिर अयोग्य घोषित करने पर उसकी सदस्यता समाप्त की जा सकती है। ट्रस्ट के हित में किसी सदस्य को हटाने का फैसला मतदान द्वारा दो-तिहाई बहुमत के आधार पर होगा। लेकिन अधिवक्ता के. परासरण को हटाने का अधिकार अन्य सदस्यों को नहीं होगा, वे मृत्युपर्यन्त इसके सदस्य रहेंगे।

ट्रस्ट को अयोध्या को एक तीर्थ नगरी के रूप में विकसित करने की पूरी जिम्मेवारी सौंपी गई है, जिसमें धार्मिक और सांस्कृतिक परम्परा को ध्यान में रखते हुए अत्याधुनिक सुविधाओं की भी व्यवस्था हो। बड़ी संख्या में तीर्थ यात्रियों के आवागमन को देखते हुए बड़े पार्किंग स्थल, यात्रियों के रहने-ठहरने के लिये आवासीय परिसर, भोजन-पानी की व्यवस्था, अयोध्या की परिक्रमा वाले पथ की देखभाल शामिल है। इसके साथ ही ट्रस्ट अयोध्या में भगवान राम से सम्बन्धित प्रदर्शनी और संग्रहालय भी स्थापित करेगी।

वैसे भारत सरकार ने ट्रस्ट को अपने क्रियाकलापों और उद्देश्यों को बदलने का पूरा अधिकार दिया है। वे अपने नियम और कायदे स्वयं तय करेंगे। लेकिन मंदिर में धार्मिक परम्पराओं का पालन और उसके उल्लंघन पर पुजारियों को हटाने का अधिकार भी उनके पास होगा। लेकिन वे ट्रस्ट के सदस्यों की वर्तमान (मौजूदा) संरचना में कोई बदलाव नहीं कर सकेंगे। इसके साथ ही उन्हें ***ट्रस्ट के मौलिक ढाँचे को बदलने का अधिकार नहीं होगा।***

डीड में स्पष्ट कर दिया गया है कि इसके सदस्य ट्रस्ट से कोई भी वेतन (तनख्वाह) या भत्ते के रूप में कोई आर्थिक लाभ नहीं लेंगे। वह केवल ट्रस्ट के काम के सिलसिले में किए गए सही खर्चे (सत्य व्यय) को वापस माँग सकते हैं। इसी तरह ट्रस्ट की बैठक में भाग लेने के सिलसिले (क्रम) में यातायात व्यय को सदस्य वापस माँग सकते हैं। सदस्यों को ट्रस्ट में वित्तीय फैसले (निर्णय) लेने की खुली छूट दी गई है। धन जुटाने से लेकर उसके निवेश करने तक वे कोई भी निर्णय (फैसला) ले सकते हैं, लेकिन उन्हें ट्रस्ट की अचल सम्पत्ति को किसी भी स्थिति में बेचने का अधिकार नहीं होगा।

बोर्ड के कामकाज को सुचारू रूप से चलाने के लिये हर तीन महीने पर ट्रस्ट की बैठक होगी, जिनमें कम-से-कम आधे ऐसे सदस्यों का उपस्थित होना (रहना) अनिवार्य होगा, जिन्हें मतदान का अधिकार दिया गया है। कतिपय साधु-संत अब भी दबाव बना रहे हैं कि ''राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक, जो बाल-ब्रह्मचारी-अविवाहित होते हैं, तथा हिन्दू-धर्म-संस्कृति के प्रति व हिन्दू समाज के प्रति समर्पित होते हैं, उन्हें ''श्रीरामजन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र-ट्रस्ट'' का संरक्षक बनाया जाए। देखें भविष्य में क्या हो सकता है? श्रीरामजन्मभूमि-संघर्ष के मान्य युगपुरुष साधु संत रामचन्द्र परमहंस के दिवंगत हो जाने के बाद अयोध्या के ही साधु संत नृत्यगोपालदास की भी बड़ी भूमिका रही है, उन्हें भी इस घोषित ''ट्रस्ट'' में एक सदस्य बनाने की भी बात उठाई गई है, शंकराचार्य स्वामी वासुदेवानन्दजी महाराज भी इसके समर्थन में हैं, अत: यह सम्भव है कि ट्रस्टीगण मिलकर उन्हें जो दो सदस्यों के रिक्त पद हैं, उसमें उन्हीं को रखें। ''ट्रस्ट'' की अगली बैठकों में स्थिति स्पष्ट हो जाएगी। श्रीरामजन्मभूमि आंदोलन समिति, श्रीरामजन्मभूमि मुक्ति संघर्ष समिति एवं श्रीरामजन्मभूमि निर्माण समिति तथा श्रीरामजन्मभूमि न्यास के माध्यमों से विश्व हिन्दू परिषद ने जो राममंदिर का प्रारूप-मॉडल बनाया व समस्त भारत तथा दुनिया में प्रचारित किया तथा ग्राम-ग्राम से राशि प्राप्त की जिनसे व अन्यों से प्राप्त चंदों से पत्थर तराशे गए, तराशे जा रहे हैं। तदनुरूप ही भव्य व विशाल श्रीराममंदिर का निर्माण होगा, यह तय है। चंदों से प्राप्त राशि अब तक व्यय होकर जो भी बैंक में एकत्र है, वह सब अब उपरोक्त ''ट्रस्ट'' को सौंप दिया जाएगा। जन्मभूमि के रिसीवर के द्वारा राजा श्री विमलेन्द्र मोहन मिश्र (आयु 64 वर्ष) को नए रिसीवर के रूप में जन्मभूमि का लघु अस्थाई मंदिर व स्थान तथा समस्त भूमि सौंप दी है।

वर्तमान काल में विपरीत प्रवृत्तियाँ

– आचार्य कनकनन्दी

कलिकाल है पंचमंकाल हुण्डावसर्पिणी यह विषम काल।
न्याय नीति सदाचार रहित लोग काम भोग व मोहासक्त।।
परमार्थ के बदले स्वार्थनिष्ठ दया दान सेवा परोपकार रिक्त।
पढाई, बढाई, चमड़ी, दमड़ी आसक्त, फेइम नेम गेइन आसक्त।।

श्रद्धा-प्रज्ञा व चर्या सम्यक् रिक्त, खाओ, पीओ, मजा आसक्त।
परप्रतिस्पर्द्धा अन्धानुकरण युक्त, दुर्बुद्धि दुर्व्यवहार उद्दण्ड युक्त।।
''अतिथिदेवो भव:'' पूर्व में भारत, ''कुत्ता से सावधान'' अभी द्वार युक्त।
आहार-औषधिक-ज्ञान-अभयदानयुक्त, अभी तो गुरु माता पिता से भी विमुख।।

शुद्ध भोजन करते थे गृह-निर्मित, मलत्याग करते थे बाहर एकान्त।
अशुद्ध भोजन करते अभी गृह के बाहर, मलत्याग करते अभी गृह के अन्दर।।
विवाह धार्मिक भोज के आयोजन, बैठकर खाते थे पंक्तिरूप में।
परोसते प्रियजन आदर मनुहार से, अभी बफर सिस्टम में सभी नौकरों से।।

आध्यात्मिकमय था पूर्व में धर्मकर्म, तपत्यागज्ञानध्यान प्रवचन।
अभी भौतिकमय चार्वाक् समान, ढोंग आडम्बर भीड़ धन प्रधान।।
शक्ति भक्ति अनुसार दान देय, चार प्रकार दान (व) दयादत्ति ज्ञेय।
दान अभी भीड़ प्रदर्शन में बोली, प्रसिद्धि वर्चस्व कामना हेतु।।

गुरुभक्ति होती थी मुक्तिनिमित्त, अभी भक्ति सत्ता-सम्पत्ति निमित्त।
जीवन्त व स्थानीय गुरु की नहीं सेवा, मरे हुए व दूरस्थ गुरु हेतु यात्रा।।
चातुर्मास विधान प्रवचन प्रतिष्ठा, केशलोंच आदि सभी धर्म साधना।।
अभी सभी है मानसम्मान भीड़ हेतु, बोली, प्रदर्शन, भोजन हेतु।।

वर्षायोग होता अहिंसा पालन हेतु, आत्मसाधना ध्यान-अध्ययन हेतु।
अभी होता आडम्बरपूर्ण आयोजन हेतु, धन-जन-मान-सम्मान हेतु।।
अनियत विहार है ज्ञानार्जन हेतु, शिष्यप्रबोधन से ले वन्दना हेतु।
स्वास्थ्यलाभ, वैयावृत्त क्षेत्र अन्वेषण हेतु, अभी तो ख्यातिपूजा धनजन हेतु।।

ज्ञानवैराग्य हेतु स्वाध्याय पंच, अभी प्रवचन हेतु पाण्डाल मंच।
मान-सम्मान भीड़ बोली प्रमुख, कथा चुटकुला मनोरंजन मुख्य।।
''वन्देत्गुणलब्धये'' हेतु पूजा, विधान, प्रतिष्ठा, प्रार्थना, तीर्थयात्रा।
शुभभाव से पुण्यबन्ध विशेष, अभी इस में संक्लेश, कामना।।

धर्म अर्थ काम मोक्ष पुरुषार्थ, अर्थ-काम अभी प्रमुख पुरुषार्थ।
सच्चे धार्मिक अभी भी महान्, सच्चे धार्मिक ही बनते भगवान्।।

चित्रकथा – 'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'

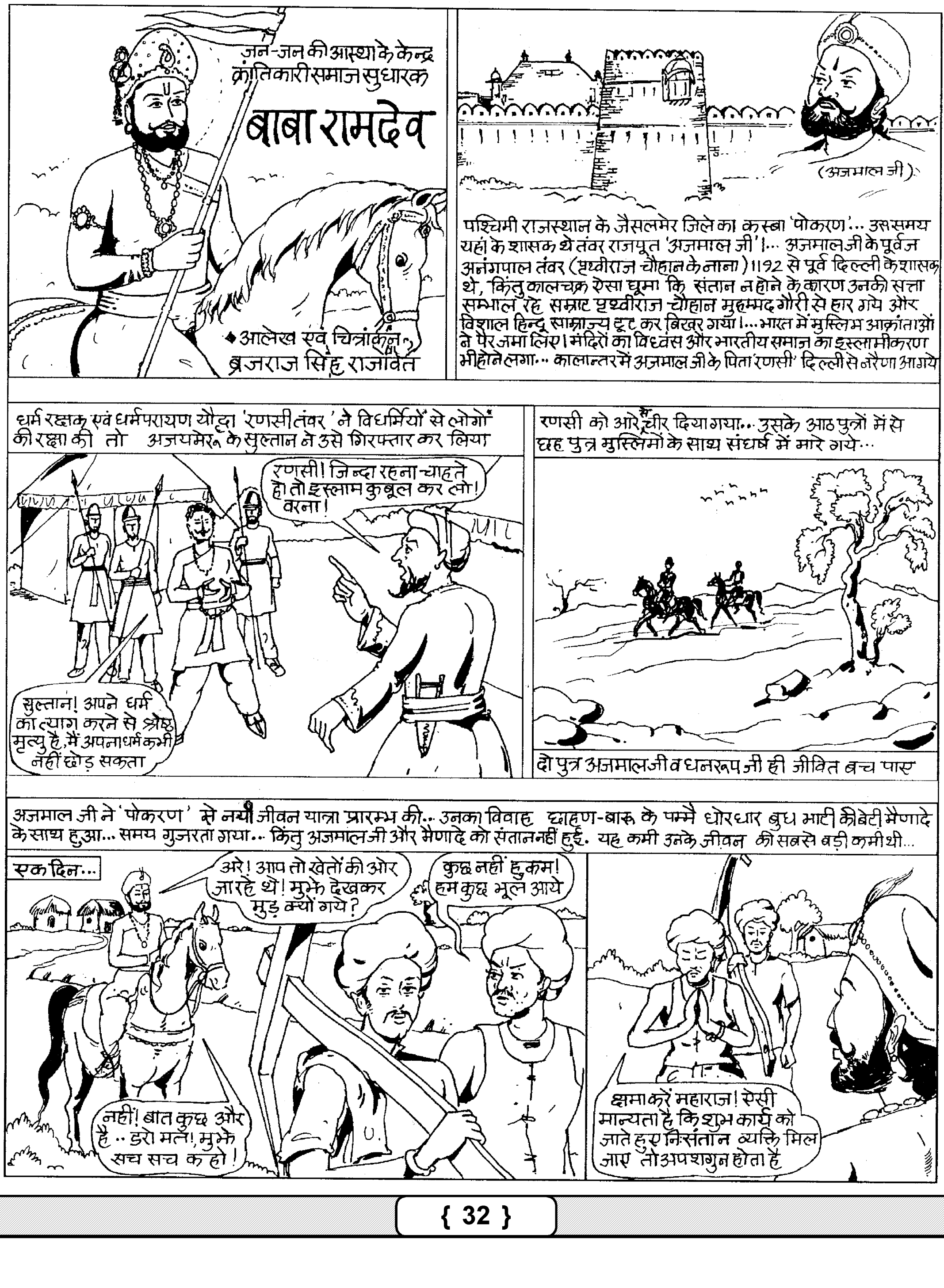

रानी! निःसंतानता की पीड़ा आज जो मुझे हुई, वह असहनीय है। ... इधर पोकरण में भैरव तांत्रिक के आतंक के कारण हमारी प्रतिष्ठा धूमिल हो रही है !... ... मैंने द्वारकाधीश की पूजा में कोई कमी तो नहीं रखी थी??
स्वामी निराश न हो! भगवान के यहां देर है अंधेर नहीं! ...आप द्वारकाधीश के पास जाकर पुनः विनती करें
अजमाल जी द्वारका जाते हैं
हे द्वारकाधीश! कब से पुत्र की मनोकामना लिए आपके पास आता रहा हूं। अब तो कृपा करो!
भगवान पर भक्त की नाराजगी बढ़ती ही गई
आप बोलते क्यों नहीं? क्या आप गूंगे हो! ...बोलो द्वारकाधीश! मुझे ऐसा पुत्र चाहिए जो भैरव का अंत कर सके
??
.. आप ऐसे नहीं बोलने वाले!! ... यह लो ऽऽ
भाई! यह तो प्रतिमा है!.. यदि द्वारिकाधीश से बात ही करनी है, तो सागर में जाओ द्वारकाधीश वहीं बिराजते हैं!
प्रचलित कथाओं के अनुसार भाव विह्वल अजमाल जी समुद्र में कूद जाते हैं जहां भगवान ने साक्षात दर्शन और वरदान दिया
क्षमा करें प्रभु! मुझ अज्ञानी बुद्धिहीन भक्त को!
भक्त तो लड्डू से ही नहीं पत्थर से भी मारे तो भी मैं नाराज नहीं होता!...कहो, क्या चाहते हो?
मेरी कामना है कि आप जैसा पुत्र हो, जो भैरव राक्षस का वध कर, प्रजा का हित चिंतक बनकर रहे!
जाओ वत्स! मैं स्वयं तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लूंगा
प्रभु! हम कैसे जान पाएंगे कि आप स्वयं पधारे हैं?
जिस समय मैं आऊंगा, तब तुम्हारे महल में कुमकुम के पैर अंकित हो जाएंगे

अपनी बात

गीता में भगवान अर्जुन से कहते हैं- ***तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।*** अर्थात् तू सब समय में निरंतर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। सभी सांसारिक दायित्व निभाते हुए भी स्मरण परमेश्वर का ही रहे। हम लोगों के तो प्रश्न उठता है कि स्मरण करें कैसे? इसका अर्थ स्पष्ट है कि भगवान का स्मरण अभी हो नहीं रहा है, करना पड़ रहा है। करना पड़ रहा हो तो ऐसे करने का कोई मूल्य भी नहीं। संसार का स्मरण तो होता है, स्वाभाविक हो रहा है, अब भगवान का स्मरण करना है तो खींच-तान कर करना होगा। तो फिर मंदिर जाते हैं। पूजा-पाठ करते हैं। नियम बना लेते हैं कि रोज सुबह घंटे भर, तो रोज रात को घंटे भर स्मरण करेंगे। जब स्मरण करने बैठते हैं तो स्मरण बना नहीं रह पाता, छूट-छूट जाता है; तब भी याद संसार की आ जाती है। माला फेरते रहते हैं और भूल जाते हैं कि माला फेरना कब बन्द हो गया और कब रुपए गिनने शुरू कर दिए। राम-राम जपते-जपते भूल जाते हैं। जप तो जारी रहता है तोता रटंत की तरह; होंठ बुदबुदाते रहते हैं और भीतर हजार बातें अन्य चलने लगती हैं; कल अदालत में मुकदमा है कि परसों कुछ और काम है, कि बेटे का विवाह नजदीक आ रहा है, कि पत्नी बीमार है। राम-राम होठों पर चलता रहता है और सब तरह की वासनाएँ भीतर हिंडोले लेती रहती हैं। यह साधारणतया हम सबकी स्थिति है।

वास्तविक जप तो स्वत: उठना चाहिए, जैसे श्वास चलती है; जैसे रक्त बहता है धमनियों में; जैसे हृदय धड़कता है-ऐसा जप चले। करना नहीं पड़े स्वत: चलता रहे। अजपा-जप, ऐसा जप चले। जप करना नहीं पड़े-होता ही रहे; अहर्निश हो। उठते हों, बैठते हों, बाजार जाएँ, धंधे पर जाएँ, काम करें, विश्राम करें-और जप चलता ही रहे। जप की अंतरधारा बन जाए। मीरा बाई कहती हैं-***'थाने नहिं बिसरूं दिन-राती'।*** आपको बिसरूं कैसे, अर्थात् विस्मरण कैसे करूं? भूलूं कैसे? दिन आते हैं, रात आती है पर आपको भूल नहीं पाती। कैसा जादू हो गया है कि उठती हूँ, बैठती हूँ, काम करती हूँ, स्नान करती हूँ, भोजन करती हूँ मगर आपकी याद है कि अहर्निश, सतत बही चली आ रही है। यह है भगवान का स्मरण। भीतर से सुवास उठे, नाद उठे, प्राण भर जाएँ डोलने लगे रोआं-रोआं।

अभ्यास से अगर राम-राम हुआ तो प्राणों का उसमें कोई सम्बन्ध ही नहीं होगा। प्रेम का कहीं अभ्यास होता है? अभ्यास तो हमें सरकसी बना देगा। जबरदस्ती थोप दिया गया, भीतर से तो नहीं उठा। सरकस में अभ्यास करवा देते हैं जंगली जानवर को भी। प्रारम्भ में भले नियम बनाकर बैठना शुरू करें, लेकिन आवश्यकता है ऐसी चैतन्य दशा बनाने की, जिससे विस्मरण ही न हो। ऐसा संसार को ठीक से समझ लेने से होगा। हम क्यों धन, पद आदि का इतना स्मरण करते हैं? इसको गहराई से समझना आवश्यक है। मैं धन की क्यों आकांक्षा कर रहा हूँ? धन की चाह में सुरक्षा की चाह है। धन मिल गया तो सब मिल जाएगा, ऐसा सोचते हैं लेकिन गहराई से समझ विकसित करेंगे तो पाएंगे कि धन से कुछ नहीं मिलता, यह झूठी यात्रा है। यह समझ आई तो धन का स्मरण धीरे-धीरे अवरुद्ध हो जाएगा। पद से क्या मिलेगा? वह भी वैसे ही मरता है जैसे पदहीन मरता है। मृत्यु फिकर नहीं करती कि कौन प्रसिद्ध थे कौन अप्रसिद्ध थे। यह समझ गहरी होगी तो संसार की आकांक्षाएँ समर्पित हो जाएंगी। तब भीतर पहली बार एक नई सुवास प्रकट होती है एक नया सरगम बजता है। उस सरगम का नाम ही परमात्मा की याद है। फिर स्मरण करना नहीं पड़ता स्वत: चलता रहता है। अब चाहकर भी विस्मरण नहीं हो पाता। गीता में भगवान का कथन इसी स्मरण के लिये है। यह स्मरण ध्यान के अभ्यासरूप योग से युक्त होता है, निरंतर स्थिर चित्त से चिन्तन चलता रहता है।

संघ का स्मरण मेरी जिन्दगी की खुराक; खुराक के बिना जीवन चल नहीं सकता; ऐसे ही संघ-स्मरण के बिना मेरा जीवन निरर्थक-सा बन जाए, यह है व्यष्टि से समष्टि की साधना। समष्टि से ध्यान लग जाए तो अब परमेष्टि की यात्रा का प्रारम्भ होना सहज हो जाता है।

वेद और पंडित जिसका आज भी वर्णन करते थकते नहीं, मुनिगण अपने चित्त को एकाग्र कर जिसका आज भी ध्यान धरते हैं, और जिसकी भक्ति में भक्तों ने इस पुनीत भारत में भक्ति की सुरसरी बहाई है वह राम ही था। जो राम था वही पुरुषोत्तम भगवान राम एक क्षत्रिय था।

रामनवमी

की हार्दिक शुभकामनाएं

IAS / RAS

तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड

Spring Board

Springboard Academy, Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda, Gopalpura, Bypass Jaipur

Website : www.springboardindia.org

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

अप्रेल, सन् 2020
वर्ष : 57, अंक : 04

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्.......

4 SS

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह